साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 1, अंक– 1, जनवरी– 2024

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 1, अंक– 1, जनवरी– 2024

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष,

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

संपादक

डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

सहयोगी प्राध्यापक,

वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

शहादा, जिला– नंदुरबार

सह–संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

सह–संपादक

प्रो. सुनिल गुलाब पानपाटिल

कानूनी सलाहकार

एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली

परामर्श मंडल

प्रो. अर्जुन चव्हाण
भूतपूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर

प्रो. सुनिल बाबुराव कुलकर्णी
निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली
एवं
निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी)
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
आगरा,
(हैदराबाद केंद्र)

एम. नधीरा शिवंति
श्रीलंका

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 1, अंक– 1, जनवरी– 2024

PEER REVIEW COMMITTEE

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता, गंगापुर सिटी
डॉ. संजीव कुमार, दरौली, सिवान
डॉ. सचिन जाधव, सिंदखेडा
डॉ. के शक्तिराज, यल्लारेड्डी, तेलंगाणा
डॉ सुरेन्द्र कुमार, रतिया
डॉ राहुल कुमार, झारखंड
डॉ. शीतल श्रीनिवास बियाणी, वाळूज
डॉ. नीलम धारीवाल, उत्तराखंड
डॉ नीतू रानी, पंजाब
डॉ सरोज पाटिल. बेतुल, म.प्र.
डॉ. सुनिल पाटिल, चेन्नई
अर्जुन कांबले, बेलगावी, कर्नाटक
ममता शत्रुघ्न माली, मुंबई
डॉ देविदास भिमराव जाधव, अर्जापूर, महाराष्ट्र
डॉ.सोनकांबले अरुण अशोक वाई,
सुषमा माधवराव नरांजे, भंडारा (महाराष्ट्र)
डॉ. श्रीलेखा के. एन., केरल
अजीति महेश्वर मिश्रा, मुंबई, (महाराष्ट्र)
वंदना शुक्ला, छतरपुर (मध्य प्रदेश)
प्रा. तेलसंग हनमंत भिमराव (महाराष्ट्र)

स्वामित्व : प्रधान संपादक, साहित्याकाश मासिक पत्रिका

प्रकाशक : डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-mail- sahityaakash24@gmail.com

Website- https://www.sahityaakash.in

*'साहित्याकाश' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं। अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

**'साहित्याकाश' पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल हैदराबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष– 1, खंड– 1, अंक– 1, जनवरी– 2024

अनुक्रम

अ.क्र.	विवरण	लेखक का नाम	पृ.सं.
1.	संपादकीय		01–01
	आलेख		
2.	मध्यकालीन संत काव्य में राष्ट्रीय एकता	डॉ. सविता धुड़केवार	02–05
3.	कमलेश्वर की कहानियों में चित्रित मध्यमवर्गीय संवेदना – एक अध्ययन	माधुरी राजाराम चव्हाण	06–09
4.	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना – बाल कविता में नयापन	डॉ. शिल्पा दादाराव जिवरग	10–14
5.	पर्यावरण संरक्षण में मीडिया की भूमिका	डॉ. जी. शान्ति एवं एस. नवीनाश्री	15–18
6.	आदिवासी विमर्श	डॉ. परमेश्वर जिजाराव काकडे	19–23
7.	'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में चित्रित स्त्री चेतना	माधनुरे राहुल	24–26
8.	ज्योत्स्ना मिलन के उपन्यास विधा में चित्रित नारी की समस्याएँ	कुमारी शकुंतला दशरथ कुंभार	27–29
9.	छात्र विमर्श : चेतना और चिंतन	डॉ. राजश्री लक्ष्मण तावरे	30–32
10.	हिंदी उपन्यास में कृषक जीवन (फाँस के संदर्भ में)	डॉ. विजय गणेशराव वाघ	33–38
11.	समाजिक परिवर्तन के संकेत	डॉ. दिप्ती केशरी	39–42
12.	"हिंदी बाल कहानी–साहित्य में पौराणिकता"	इगडे शीतल कचरु	43–47
13.	एन. चंद्रशेखरन नायर की कहानियों में वर्णित जीवन	पंकज कुमार	48–51
	साक्षात्कार		
14.	मराठी साहित्य अकादमी प्राप्त लेखिका सोनाली नवांगुल से सीधी बात	डॉ. वर्षा सहदेव	52–56
15.	सुरेशचन्द्र शुक्ल शरद आलोक जी से साक्षात्कार	डॉ. रेखा.जी	57–63
	कविता		
16.	"मन और बुद्धि"	निलोफर नाईकवाडी	64–65
17.	जमींदार	हनुमान सिंह हरदासवाली	66–67
18.	रामायण : एक प्रसंग	सौम्या अग्रवाल	68–68
19.	मित्रता	डॉ. ललिता कुमारी	69–69

संपादकीय

सम्पादक की कलम से....

मित्रों, नववर्ष की मंगलमयी शुभकामनाओं के साथ 'साहित्याकाश' का प्रथम अंक आपके हाथों में सौंपते हुए मुझे आनंद का अनुभव तो हो रहा है, लेकिन यह प्रथम अंक पाठकों की सेवा में रखते हुए कैसा लग रहा है यह बताना बडा मुश्किल है । इस नवसृजन की पीडा में दर्द नहीं है एक प्रदीर्घ प्रक्रिया से गुजरकर अंक रूपाकार होकर हमारे सामने आया है । यह 'साहित्याकाश' के प्रकाशन का आरंभकाल है । पहले यह एक सपना था, सपना देखना मुश्किल नहीं है लेकिन उसे वास्तविक रूप देते हुए बहुत प्रयास करने पड़ते हैं । हम सभी ने इस दिशा में परिश्रमपूर्वक प्रयास किये। फिर यह सपना यथार्थ बना । जिसे हमने बहुत जतन से संजोया है । मेरा यह प्रयास रहेगा कि यह पत्रिका पाठकों की आवश्यकता बन जाये । कारण यह कि वर्तमान में दूरदर्शन के विविध चैनल, फिल्म, राजनीति, समाज जीवन, आपाधापी, उपभोक्ता संस्कृति, मात्र मुनाफावादी सोच, चरम पर पहुँची स्वार्थपरता, बेतहाशा भीड–भागदौड मनुष्य जीवन को यथार्थ से– समाज जीवन से परे खींच ले जा रहे हैं । पठन संस्कृति के लोप होने का संकट समाज पर मंडरा रहा है । तब मुझे प्रामाणिक रूप से ऐसा लगता है कि एकमात्र लिखित शब्द ही जीवन को यथार्थ की ओर मोड सकता है । कारण कि किसी भी स्थिति में लिखा हुआ शब्द किसी पर थोपा नहीं जा सकता । शब्द मित्र बन मनुष्य को संबल प्रदान करता है । उसका हमराही बन मार्गदर्शन करता है । सुख–दुख का साझीदार होता है । मनुष्य की शक्ति बन जीवन के यथार्थ से रू–ब–रू होने की प्रेरणा देता है । 'साहित्याकाश' परिवार का प्रयास है कि इसमें प्रकाशित हर शब्द आपको यथार्थ के करीब लाए, उससे जोडे रखें ।

मेरा मानना है कि आज के संक्रमण काल में– कला और संस्कृति की महान विरासत के यथार्थ रूप के बेटन को आने वाली पीढ़ियों के हाथों सुरक्षित रूप में रखना है । 'साहित्याकाश' का साहित्यिक प्रपंच नवबुद्धिजीवियों, प्रबुध्द पाठकों, चिंतकों के माध्यम से सामान्य मनुष्य को रोजमर्रा की आपाधापी से बचाकर सकारात्मक, आशावादी जीवन की दिशा में सोचने के लिए एक आमंत्रण कहा जा सकता है । आज के पगडंडियों वाले शार्टकट भरे, शोर शराबे वाले जमाने में वर्तमान युवा पीढी को महान भारतीय संस्कृति के साथ चलाने के लिए प्रबुद्ध साहित्यकारों और विद्वानों को निरंतर कार्य करने की आवश्यकता है और इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'साहित्याकाश' प्रयासरत रहेगा । मेरा प्रयास रहेगा कि हर एक चीज हिसाब से और करीने से रखी जाये जिससे मैं साहित्य के माध्यम से समाज विकास के प्रति प्रतिबद्ध होकर कार्यरत रहूँ । 'साहित्याकाश' परिवार का मानना है कि हमारे इस साहित्य– जीवन की अवधि स्वास्थ्यपूर्ण एवं दीर्घायु हो । करीब एक वर्ष पहले 'साहित्याकाश' की योजना बनी और आज प्रकाशन के महंगे और खर्चीले दौर में भी हमने लंबी पारी खेलने की समुचित योजना तैयार की है । प्रवेशांक आपके हाथ में है । हमें स्वयं के साथ आप सुधिजनों पर पूर्ण विश्वास है और यही विश्वास हमारे लिए प्राणवायु का कार्य करेगी । आपकी नीर–क्षीर समीक्षा, मूल्यवान सूचनाओं, नयी नीतियों, नित नये सुझावों, मंगलमयी शुभकामनाओं तथा आशीर्वचनों की प्रतीक्षा में...

सम्पादक

मध्यकालीन संत काव्य में राष्ट्रीय एकता

डॉ. सविता धुड़केवार
असिस्टेंट प्रोफेसर
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई

शोध सारांश :

भारतीय संस्कृति में जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक महत्व दिया गया है । राष्ट्र का आधार एक निश्चित भौगोलिक सीमा होती है । इसमें रहने वाले लोगों के बीच आपसी प्रेम सद्भाव और मातृभूमि के प्रति प्रेम आदर ही राष्ट्रीय एकता का आधार है । जन्मभूमि को जननी का पद देकर मध्यकालीन संतों ने तत्कालीन समय मे ईश्वर भक्ति के साथ समाज में व्याप्त भेदभाव को दूर कर एकता का संदेश दिया । संत नामदेव, कबीरदास, गुरुनानक, रैदास, तुकाराम, पलटूदास, दादूदयाल आदि संतों ने एकता का संदेश दिया । जातिगत, धर्म–संप्रदायगत भेदभाव को भुलाकर समानता का उपदेश दिया ।

बीज शब्द– संत काव्य, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक पतन, सामाजिक चेतना, आंतरिक शुद्धि, सांप्रदायिकता, एक–सूत्रता, सामाजिक हित ।

एक देश के निवासियों की आपसी एकता, भाईचारे के भाव से राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र विभिन्न जातियों, धर्मों और भाषाओं से ऊपर होता है । एक निश्चित भौगोलिक सीमा में समूहीकरण की भावना से प्रेरित एक सूत्र में बंधे लोग ही राष्ट्र का आधार है । व्यक्ति अपने राष्ट्र का अभिन्न अंग होता है, राष्ट्र से अलग होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता । राष्ट्रीयता का अर्थ अपनी जन्मभूमि से प्रेम करना है । राष्ट्रीयता का अर्थ केवल राज्य के प्रति अपार भक्ति ही नहीं है अपितु संपूर्ण देश के साथ–साथ उसके धर्म, भाषा, इतिहास तथा संस्कृति में भी पूर्ण श्रद्धा रखना है । राष्ट्रीय एकता का भाव तभी उत्पन्न हो सकता है जब वहाँ के सभी लोगों में पारस्परिक एक–सूत्रता, एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और अपनत्व की भावना हो । राष्ट्रीय एकता ही एक ऐसी शक्ति है जो एक विशेष भूभाग पर बसे निवासियों की अनेकता में एकता को बनाए रखने में समर्थ होती है । राष्ट्रीय एकता के अंतर्गत भौगोलिक एकता, शासन की एकता, भावनात्मक एकता, सांस्कृतिक एकता, जातीय एकता, भाषिक एकता, समान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हित आदि तत्व अंतर्भूत होते हैं ।

प्राचीन भारतीय काव्य साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास उस अर्थ में नहीं हुआ जिस अर्थ में आधुनिक काल में हुआ है । भारत में राष्ट्र की संकल्पना ऋचाओं, वेदों, उपनिषदों, शतपथ ब्राह्मण आदि अर्वाचीन ग्रंथों से चली आ रही है । भारतीय धर्म ग्रंथों में 'रास्ते चारू शब्द कुवर्ते जन यास्मीन प्रदेशें विशेषे तदराष्ट्रम' कहा गया है । इसका अर्थ है किसी विशेष देश के लोग एक विशेष भाषा द्वारा विचार विनिमय करेंगे तो उस देश को राष्ट्र कहा जाएगा । इससे स्थान विशेष को राष्ट्र मानने का अर्थ ध्वनित होता है । इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों में भूमि, भाषा, जन समुदाय पर बल देते हुए विविध अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है । यजुर्वेद का दशम अध्याय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । राजा के राज्याभिषेक के समय पढ़े जाने वाले मंत्रों में राजा द्वारा 'राष्ट्र में देही' कहलाकर राष्ट्र शक्ति की लालसा को प्रदर्शित किया गया है । उपनिषदों के महान संदेश को जातीय उत्थान के लिए किसी भी काल व युग में विस्मृत नहीं किया जा सकता । विद्वानों का मत है कि राष्ट्र शब्द का अर्थगत संकोच और विस्तार प्रायः राष्ट्रीय परिस्थितियों पर ही

निर्भर रहता है । वैदिक काल सुख शांति का काल था, अतः उस समय में राष्ट्रीय भावना का इतना अधिक विस्तार नहीं हुआ था । राष्ट्र शब्द का अर्थगत स्वरूप 'वसुधैव कुटुंबकम्' को समाहित किये था । परंतु बाद में अशांति, दुर्व्यवस्था, आंतरिक कलह और विदेशी आक्रमणों की विषमता के कारण राष्ट्र शब्द अपने अत्यंत संकुचित अर्थ में ही जीवित रहा । आज की परिस्थितियों में यह आवश्यक नहीं रहा कि 'राष्ट्र' के उद्गम की अवस्था में राज्यत्व की स्थिति वर्तमान हो । वर्तमान समय की वैचारिक और भावनात्मक जीवन स्थितियों में राष्ट्र विचार एवं भावना की शक्ति का प्रतिरूप बन गया है, जिसमें आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक भावनाओं का पुट रहता है । भारतीय संस्कृति में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की उदात्त भावना के साथ जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है । यही कारण है कि मातृभूमि के प्रति प्रेम आदर की उदात्त भावना का उदय हुआ । इसी से प्रेरित होकर संतकाव्य में तत्कालीन परिस्थितियों में भक्तिभावना के साथ–साथ राजनीतिक पराधीनता, सामाजिक भेदभाव, सांस्कृतिक पतन को देखते हुए इससे बाहर निकलने का मार्ग प्रशस्त किया । संत नामदेव, कबीरदास, गुरुनानक, रैदास, तुकाराम, पलटूराम, संत रामदास आदि अनेक भक्त–कवियों ने भेदभाव तथा अमानवीय व्यवहार के विरोध में जो उपदेश दिये उसमें प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में कहीं–कहीं राष्ट्रीय एकता के भाव भी प्रकट हुए हैं । लगभग सभी संत कवि सामाजिक पतन के समय में जन्मे थे और उन्होंने सामाजिक चेतना की दिशा में एक नई राष्ट्रीयता को जन्म दिया । उनकी अप्रत्यक्ष राष्ट्रीयता का शंखनाद बाह्यशुद्धि से संबंधित न होकर आंतरिक शुद्धि का उद्घोष था, जो राष्ट्रीयता की पहली सीढ़ी है। भक्त संतों ने समाज और धर्म की सड़ी गली मान्यताओं में फंसी हुई जनता को आपसी भेद भूलाकर, सामाजिक–धार्मिक एकता, जातिगत एकता, हिंदू–मुस्लिम एकता व आपसी प्रेम भाईचारे का संदेश दिया ।

सांप्रदायिकता राष्ट्रीयता के मार्ग की एक बड़ी बाधा है । धर्म संप्रादय के नाम पर लोगों को बाँटकर सामाजिक एकता, शांति को समाप्त किया जाता है । संत कबीर समाज से इस विष को निकालना चाहते हैं । उनकी वाणी सांप्रदायिकता की आग को भड़काकर देश को जाति, धर्म के नाम पर बांटने वालों को फटकारती है–

"कहाँ हिंदू मोर राम पियारा, तुरूक कहे रहमान ।
आपस में दोउ लड़ी–लड़ी मुये, मरम न काहु जाना ।।"[1]

जाति के नाम पर समाज को तोड़ने वाले पंडित मुल्लाओं से वे सीधा सवाल करते हैं –"एक ज्योति तै सब उत्पाना, कौन ब्राह्मण कौन सुदा ।"[2] इस प्रकार वे जाति वर्ण के भेदभाव को गलत मानते हैं ।

संत दादूदयाल भी समाज में हिंदू–मुसलमानों के आपसी विरोध और बैर को देख सब के भीतर एक ही आत्मा होने की बात कहते हैं । राष्ट्रीय एकता की भावना को समाजोन्मुखी बनाते हुए वे सामान्य जनता से कहते हैं –

"हम सब देखा सोढ़ी करि, दूजा नाही आन ।
सब घटै एक आत्मा, क्या हिन्दू–मिस्लमान ।"[3]

गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित् मानस' में सामाजिक राजनैतिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर रामराज्य के नाम से सुखी सौहार्द्रपूर्ण राष्ट्र की कल्पना को सामने रखा है । वे समाजिक एकता सुख–शांति को बनाए रखने के लिए आपसी बैरभाव को त्यागकर समता स्थापित करने की बात कहते हैं –'वयरू न कर काहूसन कोई, राम प्रताप विषमता खोई ।' सामाजिक विषमता राष्ट्रीयता को हानि पहुँचाती है । जात–पात, धर्म के नाम पर लोगों में जो बैर होता है, इसके मिट जाने से मनुष्य मनुष्य के बीच की विषमता भी दूर हो जाएगी, इससे समाज में बंधुत्व भाव का विकास होगा । तुसलीदास जी संत–असंत, शक–हूण, पठान, पशु–पक्षी सभी को समदर्शी मानने की बात कहते हैं । वन्दऊ सबहिं राम के नाते–

"आकर चारि लाख चौरासी

जाति जीव जल थल नभ वासी
सीय राममय सब जग जानी
करऊ प्रनाम जोरि जुग पानी ।"[4]

प्रकृति सब को समान भाव से देखती है । सूरज, चाँद–सितारे, बादल, आकाश, पेड़–पौधे ये मनुष्य मनुष्य में भेद नहीं करते । वे सभी को समान रूप से लाभ प्रदान करते हैं । ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं करते। यह तो मनुष्य ही है जो ऊँच–नीच का भेदभाव करके समाज में अशांति फैलाता है । जैसे हवा पानी सबसे समभाव रखते हैं वैसे ही मनुष्य को होना चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं –

"नीच निवारहिं निरस तरू, तुलसी सींचहि ऊख ।
पोषद पयद समान सब, विष पियूष के रूख ।"[5]

वे कहते हैं लोग काम में न आने वाले वृक्ष, पेड़ पौधों को उखाड़ फेंकते हैं और रसभरे ऊख को सींचते हैं परंतु बादल विष–अमृत, काम में आने वाले न आने वाले सभी वृक्षों पर पानी बरसाता है । इसी तरह मानव को भी प्रिय–अप्रिय में भेद न करके सबके साथ समान प्रेम भरा व्यवहार करना चाहिए । सभी के साथ समान व्यवहार सामाजिक एकता का मूल मंत्र है ।

धर्म सभी के साथ मानवता का व्यवहार करने की शिक्षा देता है, परंतु पाखंडी धर्मगुरू जाति–पाति के भेदभाव को बढ़ावा देते हैं, परंतु संत इस भेद को मिटाकर मानव एकता की बात करते हैं । संत रविदास भी कहते हैं समाज में ऊँच–नीच की भावना रखना गलत है, हम सभी एक ही नूर की संतान है –

"रविदास एक ही नूर ते जिमि उपजन्यों संसार
ऊँच नीच किह विध भयें, ब्राह्मण अरू चमार ।"[6]

तत्कालीन समाज में हिंदू–मुसलमानों का द्वेष भाव और हिंसा, मार–काट चरम पर था । निर्दोष लोग इसका शिकार होते थे इसे देख दादूदयाल का मन दुखी हो जाता । वे हिंदू तुरकों की एकता की बात का उपदेश देते हुए समाज में शांति और सद्भाव की कामना करते हैं –

"हिन्दू तुरक न जाणों दोई ।
सांई सबनि का सोई हेरे और न दूजा देखौ कोई ।
कीट पतंग सबै जोनिन में जल थल संगि समाना सोई ।
पीर पैगम्बर देवा दानव मीर मलिक मुनिजन कौ मोहि ।"[7]

इस प्रकार दादूदयाल सभी में ईश्वर का अंश देखते हैं और हिंदू–मुस्लिम में फर्क न करके सब को समान मानने की बात कहते हैं जो राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

धर्म अधर्म के फेरे में पड़कर लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूला देते हैं । मानवता से भरा सर्व हितकारी धर्म, जो समाज को कल्याण का मार्ग दिखाता है, उसे ही जाति संप्रदाय के कटघरों में बांटकर लोगों को एक–दूसरे से अलग कर दिया गया। इससे दुखी होकर संत रविदास कहते हैं–

"जात पाते के फेरे में उलझे रहये सब लोग
मनुषता को खात हई, रवीदास जाति करिरोग ।"[8]

सूरदास भी लोगों से जाति कुल नाम को न देखकर वत्सल बनने की बात कहते हैं –

"राम भक्त वत्सल निज बानो,

जाति गोत कुल नाम गनत नहिं, रंक होय के रानो ।"[9]

ईश्वर के आगे राजा हो या रंक सभी बराबर हैं । गुरुनानक भी कहते हैं कि सारी मनुष्य जाति एक ही नूर की उपज है। फिर किसी की निन्दा क्यों? कोई अमीर तो कोई गरीब क्यों?–

"अल्लाह एके नूर उपान्यों, बाकी कैसी निन्दा ।
एक नूर ते सब जग उपन्यों, कौन भला को मंदा ।"[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संत भक्तों ने न केवल हिंदू–हिंदुओं के बीच के भेदभाव को मिटाया अपितु हिंदू–मुसलमानों के बीच वैमनस्य को भी दूर कर समाज में एकता लाने का प्रयास किया है । दादूदयाल कहते हैं–

"दादू न हम हिन्दू होहिंगे ना हम मुसलमान
षट दर्शन में हम नहिं, हम राते रहमान ।"[11]

महात्मा कबीर भी कहते हैं कि भगत अर्थात् जात–पात, ऊँच–नीच को न मानकर सभी को समान आदर देने वाले व्यक्ति ही कुल का नाम रौशन करते हैं ।

"जेहि कुल भगत भाग बड़ होई,
बरन अवरन न गनिय रंक धनि, विमल वासि निज सोई ।
ब्राह्मण, छत्री, वैस, सूद्र सब, भगत समान न कोई ।"[12]

इस तरह सभी संतों ने समाज में समानता, एकता कायम रखने की बात कही है । सभी संत सभी जीवों के प्रति समदर्शी भाव रखने का संदेश देते हैं । भेद भाव को दूर कर जन कल्याण और देश समाज के उत्थान की बात करते हैं जो राष्ट्रीयता का एक महत्वपूर्ण तत्व है ।

संदर्भ ग्रंथ–सूची:

1. संपा. श्यामसुन्दर, कबीर वचनावली – संस्करण चौदहवाँ – पृ.सं. 82
2. संपा. श्यामसुन्दर, कबीर वचनावली – संस्करण चौदहवाँ – पृ.सं. 82
3. दादूयाल की वानी – प्रथम भाग – दोहा. 24 – पृ.सं. 136
4. तुलसीदास – रामचरितमानस – बालकाण्ड – दोहा सं. 7ध के बाद की चौपाई
5. तुलसी सतसई – अभिलाश दास – पृ.सं. 99
6. गुरु रविदास – वाणी और महत्व – पृ.सं. 379
7. संत सुधासार – पृ.सं. 364
8. संत रविदास – वाणी और महत्व – पृ.सं. 181
9. सूरदास – सूर सागर – (नागरी प्रचारणी सभा) स्कन्ध–1– पृ.सं. 11
10. नानक वाणी – (जपु जी पउडी) – पृ.सं. 9
11. दादूदयाल की वाणी – प्रथम भाग– पृ.सं. 78
12. संत सुधासार – पृ.सं. 107

"कमलेश्वर की कहानियों में चित्रित मध्यमवर्गीय संवेदना – एक अध्ययन"

माधुरी राजाराम चव्हाण
शोधार्थी, हिंदी भाषा विभाग
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर, (महाराष्ट्र)
दूरभाष क्र– 7972342621
Email ID – madhurishinde90823@gmail.com

शोध सारांश –

कमलेश्वर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के प्रमुख एवं प्रसिद्ध साहित्यकार हैं । 'नई कहानी' के निर्माता कमलेश्वर का कहानी लेखन सन् 1951 इ. से प्रारंभ होता है । कमलेश्वर एक प्रतिभासंपन्न साहित्यकार, उत्तम आलोचक, संपादक, संवाददाता, वक्ता सशक्त लेखक थे । कमलेश्वर ने लगभग सभी विधाओं में अपना लेखन कार्य बड़ी सजगता से किया है । कहानी, उपन्यास, नाटक, संस्मरण, समीक्षा, संवादलेखन, वैचारिक लेख इन सारी विधाओं में उनकी रचनाएँ मिलती हैं । उनके लेखन में विविधता थी, प्रतिभा थी । उनका साहित्य जीवन की वास्तविक स्थितियों से होकर गुजरता है, जिसमें यथार्थवादी दृष्टिकोण उभर आता है । उनकी कहानियाँ मध्यमवर्गीय तथा निम्न–मध्यमवर्गीय संवेदना को दर्शाती है । मध्यमवर्गीय लोगों में स्थित, रीति–रिवाज उनकी जीवन शैली, परंपराएँ, उनकी समस्याएँ त्रासदी, मजबूरी, पीड़ा, संस्कार आदि का वर्णन बडी सजगता से किया है । कमलेश्वर का साहित्य संसार बहुत विस्तृत है । उनका कहानी लेखन अद्‌भुत है, उसके साथ ही उनके उपन्यास, नाटक, संवाद, पटकथा भी बेहतरीन है ।

संकेताक्षर– नई कहानी, मध्यमवर्गीय संवेदना, स्वातंत्र्योत्तर कहानी ।

साहित्य के क्षेत्र में देखा जाए तो बहुत सारी विधाओं का जन्म हुआ जैसे– उपन्यास, नाटक, कहानी, संवाद, रिपोर्ताज, समीक्षा आदि। लेकिन इन सारी विधाओं में सबसे प्रिय तथा लोंगों द्वारा सराही हुई विधा अगर कोई है, तो वो है कहानी । कहानी एक एसी विधा है, जो बच्चों से लेकर बड़े– बूढ़ों तक सबको पसंद आती है । शायद इसी कारण कहानी विधा ने सबसे अधिक प्रसिद्धि पाई । कहानी में सबसे अग्रणी लेखकों के नाम देखे जाए तो सबसे पहले हमें कुछ नाम याद आते हैं, जैसे कि– कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, अमरकांत, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, कृष्णा सोबती आदि । स्वातंत्र्योत्तर समय के बाद नई कहानी, समांतर कहानी का जो आंदोलन चला उसके प्रमुख थे– कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, दुष्यंत कुमार । स्वतंत्रता के बाद कहानी बस एक मनोरंजन का साधन मात्र न रहकर जनता के दुख, दर्द, पीड़ा, समस्या, कुंठा की प्रमुख आवाज बनी । कहानी द्वारा सामाजिक संदेश का कार्य दिया जाने लगा । अब कहानियाँ काल्पनिक न होकर हमारे यथार्थ से जुड़ गई थी । समाज में घटित हो रही घटनाओं, परिस्थतियों को आधार बनाकार कहानियों की रचना होने लगी । कमलेश्वर की कहानियाँ भी यथार्थबोध से जुडी हुई थी । उनकी कहानियाँ पूँजीपति या गरीबी का दर्शन नही कराती थी, बल्कि मध्यमवर्ग तथा निम्न–मध्यमवर्ग की जीवनशैली को भी उजागर करती है । मध्यमवर्गीय जीवन को कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में बड़े प्रभावी ढंग से उतारा है ।

कमलेश्वर की लगभग सौ से भी जादा छोटी–बड़ी कहानियों ने हिंदी साहित्य जगत में अपना बड़ा योगदान दिया है । उन्होंने पहले 'नई कहानी' और उसके बाद 'समांतर कहानी' आंदोलन के माध्यम से मध्यमवर्गीय सामान्य जन का उनकी

समस्याओं का, बदलती जीवनशैली का चित्रण किया । मध्यमवर्गीय लोगों की जीवनशैली, उनके रीति–रिवाज, परंपराएँ, उनकी समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया । कमलेश्वर कि सारी कहानियों में, कस्बे तथा नगरीय, महानगरीय जीवन की गतिविधियों को सजग रूप से उतारा है । कमलेश्वर ने अपने जीवन काल में एक से बढ़कर एक अनुपम कहानियों की रचना की जिसमें प्रमुख है– राजा निरबंसिया–1957, कस्बे का आदमी–1958, खोई हुई दिशाएँ–1963, मांस का दरिया–1964, जिंदा मुर्दे–1969, कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ–1976, इतने अच्छे दिन–1989, कथा प्रस्थान रावल की रेल–1992, और कोहरा–1994, परिक्रमा–1996, महफिल–2000, समग्र कहानियाँ–2001 इत्यादि कहानियों का समावेश हैं । आधुनिकता की चकाचौंध में आम आदमी की पहचान जैसे खोती नजर आ रही है । महानगरों के मध्यमवर्ग का जीवन बड़ा तेज, भागदौड वाला हो गया है । घड़ी की सुई के साथ सबको भागना पड़ता है। यही कारण है कि उसे अपने बारे में सोचने–समझने का वक्त ही नहीं मिलता, कमलेश्वर ने अपनी कहानियों के माध्यम से यही दिखाने की कोशिश की है ।

'राजा निरबंसिया' –

कमलेश्वर का प्रथम कहानी संग्रह 'राजा निरबंसिया' है जिसमें 7 कहानियाँ प्रकाशित है । राजा निरबंसिया प्रस्तुत कहानी है । इस कहानी के अंतर्गत कमलेश्वर ने जगपती और चंदा के माध्यम से एक मध्यमवर्गीय अभावग्रस्त जोडे को दिखाया है, बड़े यथार्थवादी ढंग से कमलेश्वर ने इसे दो कहानियों के बीच जोड़ा है । एक है जो प्राचीन लोककथा है, तो दुसरी नई कहानी है । दोनों कहानियों के माध्यम से उन्होंने दाम्पत्य जीवन के संबंधों में परिवर्तन को, अभावग्रस्त जीवन की समस्याओं को दिखाया है । नई कहानी में जगपति जो लेखक का बचपन का दोस्त है, उसकी कहानी है । एक बार जब जगपति अपने रिश्तेदारी में किसी दयाराम की शादी में जाता है, तब वहाँ डाका पड़ता है । उसी वक्त संघर्ष में उसकी जाँघ पर गोली लग जाती है । उसे गाँव के अस्पताल में भर्ती कराया जाता है । जब जगपति को दवाइयों की जरूरत होती है, तब पैसो के अभाव के कारण उसकी पत्नी चंदा अपनी चुड़ियाँ देकर इलाज का इंतजाम करने की कोशिश करती है । अस्पताल का लाजमी खर्च उठाने की भी परिस्थिती इन दोनों की नही है, इस कहानी द्वारा, कमलेश्वर ने निम्न मध्यमवर्गीय, अभावग्रस्त जीवन पद्धति की ओर ध्यान आकृष्ठ किया है । अपने परिवार पर आई मुसीबतों का हल स्वरूप घर की गृहिणी को अपने जेवरों को भी दाँव पर लगाने की नौबत आती है । अभावग्रस्त जीवन में अपनी छोटी–छोटी इच्छाओं को भी मारना पड़ता है ।

'बयान' –

कमलेश्वर की 'बयान' एक 38 वर्षीय महिला की कहानी है, जिसको उसके पति की ही, आत्महत्या के लिए जिम्मेदार ठहराकर कटघरे में खड़ा किया जाता है । उसका पति एक इमानदार फोटोग्राफर था, जो राजनेताओं के दावपेचों में फसकर खुद को खत्म कर लेता है । रेगिस्तान में की गई विकास योजना के अंतर्गत पेड लगाए जाने कि बात एक नेता करता है । जिसके विरोध में विरोधी दल के नेता द्वारा कुछ तस्वीर दिखाई जाती है, जिनमें न पेड थे न जंगल । यह तस्वीरे उस फोटोग्राफर द्वारा निकाली गई थी जिसके कारण उस फोटोग्राफर को ही नौकरी से निकाला दिया जाता है । उस फोटोग्राफर पर अपनी पत्नी और बेटी की जिम्मेदारी थी । चिंता और निराशा की वजह से उसकी आँखों से खून बहने लगा । जैसे–तैसे नोकरी करके उसकी पत्नी घर चला रही थी, बच्ची को संभाल रही थी । ऐसी स्थिती में निराशाग्रस्त फोटोग्राफर जीवन से हार मान कर आत्महत्या कर लेता है, और सबसे बुरी बात यह है कि उसकी आत्महत्या करने का प्रमुख कारण उसकी पत्नी को ही ठहराने की कोशिश कि जाती है । इस तरह 'बयान' कहानी में लेखक ने हर तरह से खपता हुआ, पीसता हुआ, शोषित, दबा हुआ, विवश, लाचार मध्यमवर्ग को चित्रण किया है ।

'आत्मा की आवाज'–

कमलेश्वर ने मध्यमवर्ग के दाम्पत्य जीवन का तनाव अपनी कहानी– 'आत्मा की आवाज' में दर्शाया है । इस कहानी में लेखक दो चित्र देता है । पहला गोपाल और उसकी पत्नी का और दूसरा उसकी प्रेमिका का जो किसी और से विवाहिता है । दोनों प्रसंग उनके रसोईघर के है । वे मध्यमवर्ग की नारियाँ हैं । और मध्यमवर्ग के पारीवारिक स्थिति अनुसार घर की बहू को ही खाना बनाना पड़ता है । दोनों से भी अपने–अपने ससुराल में रोटियाँ टेढ़ी बनती है, परंतु एक मार खाती है, घरवालों से पिट जाती है, तो दूसरी का लाड–प्यार होता है । उसके साथ समझदारी से व्यवहार किया जाता है । वास्तव में अपनी परिस्थतियों से जुझकर नारी का मन कहीं खो सा जाता है । वह बाहय दुनिया से कट जाती है । इसका चित्रण 'आत्मा की आवाज' में हुआ है । पैसा, सुख, सुविधाएँ देखकर, नौकरी, जमीन, घर–बार देखकर आज की नारी ब्याही जाती है, लेकिन उसके आत्मा की आवाज उसके प्रेमी से ही बँधी रहती है । दु:खद परिस्थिति में भी वह दोहरी मार सहती है । अगर प्रेमिका पत्नी न बन पाए तो पुरुष का कुछ नहीं बिगड़ता परंतु नारी की आत्मा की आवाज उसे झकझोडती रहती है । इस तरह कमलेश्वर ने मध्यमवर्ग के दाम्पत्य तणाव का दर्शन इस कहानी द्वारा किया है ।

'बेकार आदमी'–

कमलेश्वर की 'बेकार आदमी' कहानी में–मध्यमवर्गीय लोगों को अपने सपने से कैसे समझौता करना पड़ता है, यह दिखाया गया है । रोजगार देने वाले दफ्तर में रोजगार देने वाला आदमी ही अपने आप को अनुपयुक्त समझता है । यह अधिकारी अपने आपको उस दफ्तर के लिए तब असंगत समझता है, जब एक लेखक उसके सामने नौकरी के लिए आता है । वहाँ पर वह लेखक नौकरी के लिए आया है, तब उस व्याक्ति को घुटन सी होती है,क्योंकि वह अधिकारी स्वयं एक लेखक बनना चाहता था । और दूसरी तरफ वह जो लेखक है, उसे अफसर बनना है । इसका मतलब जिसे लेखक बनना था वो तो पत्रिका का संपादक, रिपोर्टर या संवाददाता ना होकर रोजगार दफ्तर में उलझा है । और बेकार युवक लेखक, रिपोर्टर होते हुए अफसर बनने आया है । कमलेश्वर ने ने इस कहानीद्वारा मध्यमवर्गीय युवाओं की नोकरी कि तलाश, टुटता सपना, अपने सपने से किया हुआ समझौता यह दिखाकर आज के युवाओं का विडंबनात्मक चित्र खींचा है ।

'एक थी विमला'–

यह कमलेश्वर की चार खंडो में विभाजीत कहानी है । कहानी का आधार मध्यमवर्ग का अभावग्रस्त जीवन झेलने वाली अविवाहित युवती के आस–पास घूमता हैं, निम्न मध्यमवर्ग की कितनी युवतियाँ अपने परिवार का बोझ ढोते–ढोते अपनी जिम्मेदारियों के बीच खो जाती है । आर्थिक समस्याओं के होते उन्हें बिन ब्याही रहकर अपना अभावपूर्ण आधा–अधूरा जीवन व्यतीत करना पड़ता है । कमलेश्वर ने इस कहानी के माध्यम से आर्थिक संकटो से गुजरने वालें लोगों की जीवन की परेशानियाँ दिखाई हैं । आर्थिक संघर्ष में जीवन व्यतीत करने वाली युवतियाँ, अपनी रोटी का जुगाड़ करने के लिए अपने विवाह की आवश्यकताओं को भी पीछे छोड़ देती हैं । मध्यमवर्गीय लोग अपने संस्कार, अपने आचार–विचारों से जुडे रहते हैं । यही मानसिकता विमला नाम की लड़की को कभी दहलीज पार करने नहीं देती । अपने जीवन के खालीपन को दूर करने करने के लिए, सुनीता का गुड़िया से खेलना उसकी मजबूरी है । कमलेश्वर ने इस कहानी द्वारा मध्यमवर्गीय जीवन जीने वाली किशोरियों कें टूटते अरमानों को चित्रित किया है ।

'दुखभरी दुनिया'–

कमलेश्वर की कहानी 'दुखभरी दुनिया' में हमारे देश के महत्वकांक्षी मध्यमवर्ग का चित्र दिखता है । बिहारी बाबू एक लाचार गरीब पिता है, जिसके सारे अरमान अपने आठ साल के बेटे दीपू पर टिके हैं । बिजली कंपनी में काम करने वाले बिहारी

बाबू को अपने अफसरों को देखकर बड़ा दुख होता है । उनकी नज़र में तो कंपनी के इंजीनियर बसे है,जो कारों में घूमते हैं । इसलिए वो भी चाहता है कि उसका बेटा बड़ा होकर इंजीनियर बने । वे नही चाहते की उनकी तरह उनके पुत्र की भी हालत ऐसी ही रहे । अपनी तरह दुख दर्द अपने बच्चे को झेलने पड़े । इसलिए उसके पढ़ाई के के लिए दफ्तर से आते ही घंटो तक माथा फोडते हैं । अपने पिता के बड़े सपने और महत्वकांक्षाओं के बीच उस छोटे बच्चे का बचपन कहीं खो जाता है । उस बच्चे का भोलापन देखकर उसके प्रति सहानुभूति के भाव प्रकट होते है । इस तरह इस कहानी द्वारा कमलेश्वर ने मध्यमवर्ग परिवार की महत्वकांक्षा के साथ घुटन और निराशा को भी चित्रित किया है ।

कमलेश्वर की बहुत सारी कहानियाँ मध्यमवर्ग की निराशा, कुंठा, आक्रोश, समस्या, विवशता को दर्शाती है । कमलेश्वर की कहानियों का सागर बड़ा है । इन सारी कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने– मास का दरिया, दुखों कें रास्ते, उपर उठता हुआ मकान, दूसरे, जो लिखा नही जाता, कुछ नही कोई नही, भरे पूरे अधूरे, जिंदा मुर्दे, नया किसान,आसक्ती, राते इन सारी कहानियों में, मध्यमवर्ग तथा निम्न–मध्यमवर्ग का सजग चित्रण किया हैं । जीवन के हर क्षेत्र में खपता, पिसता शोषित, लाचार, विवश, दबा हुआ मध्यमवर्ग दर्शाया है । कमलेश्वर ने इन सारी कहानियों द्वारा मध्यमवर्गीय जीवन की वास्तविकता दिखाई है । कमलेश्वर की कहानियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है । मध्यमवर्ग जीवन की त्रासदी, मानसिक पीड़ा, मनोवृत्ति, सादगी, अपनापन, भोलापन, संस्कारशीलता, विद्रुपता आदि भाव दिखाई पड़ते हैं । अपनी अलग–अलग कहानियों के माध्यम से उन्होंने मध्यमवर्गीय संवेदना, चेतना को दर्शाया है । कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में मध्यमवर्गीय जीवन की निराशा, अस्तित्व, संघर्ष, टूटन, प्रदर्शन प्रियता,असंगति बोध, पीढियों का संघर्ष, टूटते सपने आदि को व्यक्त किया है । इस प्रकार कमलेश्वर कि कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर भारत की मध्यमवर्गीय परिवर्तित मानसिकता का विस्तृत रूप व्यक्त हुआ है ।

संदर्भ–

1) कमलेश्वर, मेरी प्रिय कहानियाँ – पृ. 6
2) कमलेश्वर, मेरी प्रिय कहानियाँ – पृ .7
3) कमलेश्वर, मेरी प्रिय कहानियाँ – पृ. 8, 11, 12
4) कमलेश्वर, मेरी प्रिय कहानियाँ – पृ. 17, 37
5) कमलेश्वर की समग्र कहानियाँ
6) आधुनिक गदय साहित्य – पृ. 146, 162
7) मंजुला देसाई – कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन, पृ. 114,117
8) मंजुला देसाई – कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन, पृ. 121, 122
9) मंजुला देसाई – कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन, पृ. 128,129
10) मंजुला देसाई – कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन, पृ.130, 133
11) मंजुला देसाई – कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन, पृ.179

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना – बाल कविता में नयापन

डॉ. शिल्पा दादाराव जिवरग
असोसिएट प्रोफेसर एवं शोधनिर्देशक
हिन्दी विभाग, पंडित जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
छत्रपती संभाजीनगर – 431 001
फोन – 8275322794
shilpajivrag@gmail.com

सारांश :

बाल अवस्था, युवा अवस्था, प्रौढ अवस्था एवं वृद्ध अवस्था इन चार अवस्थाओं से मनुष्य का जीवन गुजरता है । जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण और अन्य तीन अवस्थाओं की नींव रखी जाती है, वह है बाल अवस्था । मनुष्य का बचपन उसके आने वाले भविष्य निर्माण में सहायक होता है । इसी बचपन को बच्चों के जीवन में लाने के लिए हमें साहित्य मदतगार सिद्ध होता है । किसी भी देश के भविष्य उसके बालक होते हैं । इसलिए संसार के प्रत्येक देश में बालकों के विकास पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है । हिंदी साहित्य के बाल साहित्य में ऐसी जादूई लय और प्रभावशाली रचनाएँ अनंत है और वे बाल साहित्य की हर विधा में है । आजादी के बाद की बाल कविता को एक नया कल्पांतर देकर उनमें नई ताजगी और समय की नई धडकने लाने वाले बड़े और दिग्गज कवियों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (1927–1983) एक है । बालगीतों में एक नयापन, आधुनिक रंग–ढंग, गति और अंदाज देने वाला उनका अंदाज औरों से एकदम अलग और बेमिसाल है ।

कोई भी बड़ी और समृद्ध भाषा का मापदंड उसका बालसाहित्य है । जो भाषा सच में बड़ी होती है और जिसमें संवेदनाओं का आयतन बड़ा होता है, वह उतनी ही अपने समाज में बच्चों और उनके लिए लिखे जा रहे साहित्य की परवाह करती है और यही नहीं, दुनिया के बड़े से बड़े साहित्यकारों ने बहुत ममत्व और आनंद से भरकर बच्चों के लिए लिखा है । शायद इसलिए कि बच्चों के लिए लिखते समय मन एक बच्चे जैसा ही सरल हो जाता है और निर्मल आनंद में डूब जाता है ।

किसी लेखक के लिए बाल साहित्य की सर्जना एक दोहरे सुख की तरह है । एक तो बाल साहित्य लिखते समय अपने बचपन को फिर से जी लेने का दुर्लभ सुख मिलता है। वैसे भी बाल साहित्य पढ़ना और बाल साहित्य लिखना दोनों ही एक जादुई सुख की तरह है । इसलिए कि बाल साहित्य के साथ मन और कल्पना की जादुई उड़ान जुड़ी है । फिर आज के बच्चे के मन और इच्छा संसार से गहराई से जुड़ते हुए लगता है, दुनिया उससे कहीं अधिक सुंदर और अर्थवान है, जितनी वह हमें ऊपर से नजर आती है । बच्चों से जुड़ना मानो आने वाले युग और भविष्य से भी संवाद है, जिनमें बहुत बार तो आज के जटिल प्रश्नों के जवाब छिपे होते हैं ।

हिंदी के बाल साहित्य में ऐसी जादुई लय और प्रभावशाली रचनाएँ अनंत है और वे बाल साहित्य की हर विधा में हैं । अपने एक बड़े पुराने और वरिष्ठ बालकवि कन्हैयालाल मत्त के शब्दों को याद करूं तो, "बाल साहित्य वह है जिसे पढ़कर बच्चे के मन की कली खिल जाए।"

आज़ादी के बाद की बाल कविता को एक नया कल्पांतर देकर उनमें नई ताजगी और समय की नई धडकने लाने वाले बड़े और दिग्गज कवियों में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक है । बालगीतों में एक नयापन, आधुनिक रंग–ढंग, गति और अंदाज देने वाला उनका अंदाज औरों से एमदम अलग और बेमिसाल है। खेल खेल में गीत रचने और उसमें अपने समय और युगप्रश्नों से जुड़ी कोई नई बात ले आने का उनका कौशल निराला है ।

इसी तरह सर्वेश्वर ने बच्चों के लिए ऐसे नाटक लिखे जो अपनी रंगमंचीय सक्रियता और जबरदस्त रचनात्मकता के लिहाज से हमेशा याद किए जायेंगे । बच्चों की दुनिया में खेल–खेल में बहुत कुछ नया जोड़ने वाले नाटक जो सही मायने में बच्चों के आधुनिक नाटक कहे जा सकते हैं । इस तरह बाल–साहित्य में कविता और नाटक दोनों मोर्चों पर सर्वेश्वर ने नितांत मौलिक अंदाज में जो काम किया, वह अपनी मिसाल खुद है । सहज हास्य और व्यंग्य के साथ अपने समय के प्रश्नों और समस्याओं से टकराने का साहस उनकी कविताओं और नाटकों को कुछ खिलदंडा बनाने के साथ–साथ एक अलग आभा भी देता है, जिसमें हलके ढंग से गहरी बात कहने की क्षमता हो और यही उन्हें एक अलग और विशिष्ट शख्सियत भी देती है ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना सहज ही हिंदी बाल कविता के एक बड़े प्रतिभावान कवि हैं । वे जिस ढंग से एक छोटी–सी बात को लेकर आगे चलते हैं और कविता तराशते हैं, वह काट खुद में एक बड़ी चमक लिए होती है । उनकी बाल कविता को आप दूर से देखकर भी कहेंगे, "यह सिर्फ सर्वेश्वर ही लिख सकते हैं ।" और यह बात दूसरों से सर्वेश्वर को बहुत ऊपर उठा देती है । उनकी भाषा भी यहाँ ऐसी है जैसे जीवन से सीधे–सीधे बतियाकर हाल–चाल पूछ रही हो ।

'बतूता का जूता' के इब्न बतूता का यह बेढब हाल

इब्न बतूता पहन के जूता
निकल पड़े तूफान में,
थोड़ी हवा नाक में घुस गई,
घुस गई थोडी कान में ।
कभी नाक को कभी कान को
मलते इब्न बतूता,
इसी बीच में निकल पड़ा
उनके पैरों का जूता ।
उडते उडते जूता उनका
जा पहुँचा जापान में,
इब्न बतूता खडे रह गए
मोची की दुकान में ।

इब्न बतूता की तरह ही सर्वेश्वर की 'बिल्ली के बच्चे' नायाब कविता है। कविता में क्या कुछ कहा जा सकता है और उसका केनवस ही नहीं, उसके स्वप्नों और आदर्शों की दुनिया कितनी बड़ी और फैली–फैली हो सकती है । "किताबों में बिल्ली ने बच्चे दिए है" और उन्हें देख–देखकर सर्वेश्वर का कवि न सिर्फ हैरान, बल्कि उत्साहित भी हो रहा है कि "ये बच्चे बड़े होकर अफसर बनेंगे ।" उनका यही उमगता हुआ उत्साह मानो एक अनोखी लय में ढल गया है, जिसमें खेल भी है और नए जमाने की समझ भी।

किताबों में बिल्ली ने बच्चे दिए है

ये बच्चे बड़े होके अफसर बनेंगे,
दरोगा बनेंगे किसी गाँव के ये
किसी शहर के ये कलक्टर बनेंगे ।
न चूहों की इनको जरुरत रहेगी
बडे होटलों के मैनेजर बनेंगे
ये नेता बनेंगे और भाषण करेंगे
किसी दिन विधायक, मिनिस्टर बनेंगे
पिलाऊंगा मैं दूध इनको अभी से
मेरे भाग्य के ये रजिस्टर बनेंगे ।

ऐसी कविताएँ हिंदी में उंगलियों पर गिनने लायक है। यों कविता का मिज़ाज थोड़ा हास्यपरक है और इसमें खासा चुटीलापन भी है, पर साथ ही इसमें एक बडा गंभीर संदेश भी छिपा है। इस कविता को पढ़कर पता चलता है कि पढ़ने लिखने को सर्वेश्वर कितने बड़े मूल्य के रूप में सामने रखतें हैं । यानी लिखना–पढ़ना जरूरी है, यहाँ तक कि बिल्ली के बच्चे भी किताबों में पैदा होते है तो वे कुछ भी बन सकते हैं और बड़ा नाम कमाकर दिखा सकते हैं ।

इसी तरह 'ध्रुवतारा' सर्वेश्वर के लिए ऊंचे जीवन–आदर्शों की मिसाल है । ध्रुवतारे पर सर्वेश्वर ने एक सुंदर कविता लिखी है, जिसमें जीवन में ऊँचा उठने और कुछ कर दिखाने के सपने के साथ–साथ ऊँचे आदर्शों की भी झलक है–

'ऊँचा और खींच दे कोई
सपनों का कंदील हमारा
धरती से अच्छा लगता है
अंबर में अपना उजियारा ।'

फिर ध्रुवतारे की एक खासियत यह भी है कि वह भूले–भटकों को रास्ता दिखाता है । वह निरंतर जलने वाले एक ऐसे दीप की तरह है जो हर किसी को भटकने से रोकता है तथा राह भूले को घर का पता बताता है –

दूर आ रहा होगा कोई
मेरे घर का पता पूछता,
उसे भटकने से रोकेगा
यह मेरा रंगीन सितारा ।

सर्वेश्वर की कई कविताओं में हास्य की बडी मीठी झलक है। उनकी 'मंहगू की टाई' में हास्य–विनोद के किस्से है जिनमें बदले हुए जमाने का यथार्थ भी है । मंहगू को नौकरी की दरकार थी । इसलिए उसने रोब डालने के लिए टाई खरीदी । लेकिन फिर भी नौकरी नहीं मिली तो बेचारे बड़ी परेशानी में पड़ गये । इस बाल कविता में हमारे समाज की आधुनिकता की विडंबना पर बड़ा महीन व्यंग भी है ।

मंहगू ने महँगाई में
पैसे फूंके टाई में
फिर भी मिली न नौकरीं
औंधे पड़ चटाई में ।

गिटपिट करके हार गए
टाई ले बाजार गए,
दस रुपए की टाई उनकी
बिकी नहीं दो पाई में ।

इसी तरह सर्वेश्वर की एक कविता में चूहें और ऊँट का मजेदार किस्सा है । चूहा बड़ी अकड़ के साथ ऊँट पर सवार होकर अपने ननिहाल जा पहुंचा तो वहा अजब तमाशा हुआ । देखते ही देखते ऊँच गायब हो गया । इन पंक्तियों में जरा ऊँट पर सवार होकर सैर करने निकले चूहे के ठाट–बाट देख लीजिए।

चूहा एक ऊँट पर चढ़,
झटपट चला बहादुरगढ़ ।
राह में गहरा ताल मिला,
चूहे का ननिहाल पडा ।
चूहा खा–पी सो गया,
ऊँट नहाकर खो गया ।

एक कविता में नेता की दो टोपियों और गदहे के दो कानों का झमेला है और इसी में हास्य–विनोद के बड़े ही मजेदार रंग भी हैं –

नेता के दो टोपी
और गदहे के दो कान,
टोपी अदल–बदलकर पहनें
गदहा था हैरान ।

सर्वेश्वर की कुछ कविताओं में जीवन के ऐसे दृश्य हैं जिनमें बहुत सहज हास्य–बोध है । इसलिए वे मन में गड़े रह जाते हैं। सर्वेश्वर बडे निराले अंदाज में उन्हें बाल कविता में लाते हैं । उनकी कविता में जरा सिर पर मटका रखे इस ग्वालिन को देखे, जिसे शाम होने की वजह से अपने गाँव बरसाने जाने की जल्दी है –

सिर पर रक्खे
दही का मटका,
झटपट उसने
केला गटका ।
फिर बोली
यूं आँखे मटका,
और न ज्यादा
मुझको भटका ।
शाम हो गई, घर जाना है
गाँव हमारा बरसाना है ।

जिंदगी में हर जगह नकल करने वाले मिल जाते हैं और वे नकल में ऐसी महारत हासिल कर लेते हैं कि अपने करतबों से असली को भी पछाड देते हैं । पर असली कितनी ही मात खा जाए, उसके पास एक ऐसा तीर जरूर होता है जिसके छुटते ही नकली के होश फाख्ता हो जाते हैं । सर्वेश्वर की एक कविता में भी यही होता है जिसमें ऊँट और हाथी की तुलना है। हर जगह हाथी खुद को बडा और ज्यादा रोबदार साबित कर लेता है–

देख ऊँट को पैदल चलते
हाथी ट्रक पर हुआ सवार,
देख ऊँट को बीड पीते
हाथी पीने लगा सिगार ।
देख ऊँट का चना–चबेना
हाथी ने ली केक उकार
देख ऊँट की फटी लंगोटी
हाथी लाया सूट उधार ।

निष्कर्षतः सर्वेश्वर की किशोर पाठकों के लिए लिखी गई 'यदि मैं घोड़ा होता' सरीखी लंबी कविताएँ भी कमाल की हैं । इन्हें पढ़कर बच्चों को लेकर उनकी खुली सोच पता चलती है । सर्वेश्वर ने बच्चों के लिए बहुत अधिक कविताएँ नहीं लिखी, पर जितनी भी लिखी है, वे बडी प्रयोगात्मक है और कुछ न कुछ नई बात, नया अंदाज उनमें है । उनकी बाल कविताओं के संग्रह हैं– 'बतूता का जूता', 'मंहगू की टाई', 'बिल्ली के बच्चे' तथा 'नन्हा ध्रुवतारा' जिन्हें आज भी बच्चे बड़े चाव से पढ़ते हैं । सच तो यह है कि सर्वेश्वर की कविताओं में कोई न कोई नई बात, और भाषा का उस्तादी भरा नया अंदाज तथा भाव मुद्राएँ जरूर मिल जाती हैं । इसलिए सर्वेश्वर की गिनती उन थोडे से दिग्गज साहित्यकारों में होती है, जिन्होंने बाल साहित्य में नई जमीन तोडी और सचमुच नया इतिहास रच दिया । इसलिए बाल पाठक ही नहीं, नई पीढ़ी के लेखक भी उनकी रचनाएँ इतनी उत्सुकता और कौतुक के साथ पढ़ते हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1) सम्पादक डॉ. शकन्तुला– बाल साहित्य का स्वरूप और रचना संसार
2) डॉ. जगदीश गुप्त– नई कविता स्वरूप और समस्याएँ
3) डॉ. अरुण कुमार– नई कविता – कथ्य एवं विमर्श, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण –1988
4) डॉ. हरिचरण शर्मा–सर्वेश्वर का काव्य संवेदना और सम्प्रेषण.
5) डॉ. कालीचरण स्नेही– सर्वेश्वर और उनका साहित्य, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण–1997

पर्यावरण संरक्षण में मीडिया की भूमिका

डॉ. जी. शान्ति
असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एस. नवीनाश्री
स्नातकोत्तर छात्रा
श्री अभिरामी इल्लम, 2/179 B2, वनप्रस्था रोड़
वड़वल्लि, कोयम्बत्तूर – 641 041, तमिलनाडु
मोबाइल – 9443652088

शोधसार–

आधुनिक समाज में विकास अनिवार्य है । हालाँकि, जब विकास स्थायी नहीं होता है और इसमें पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को ध्यान में नहीं रखा जाता है, तो यह मानव जाति के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा करता है । मनुष्य प्रकृति का एक भाग है; वह स्वार्थी कारणों से प्रकृति का तेजी से शोषण कर रहा है । मनुष्य और प्रकृति जीवन समर्थन प्रणाली का एक जटिल अंश हैं जिसमें पाँच तत्व शामिल हैं– वायु, जल, भूमि, वनस्पति और जीव–जन्तु । किसी एक तत्व के ख़राब होने से शेष चार तत्वों पर इसका प्रभाव पड़ता है । अल्पकालिक गिरावट अपने आप ठीक हो सकती है, लेकिन अगर यह लंबे समय तक जारी रहती है तो इसमें पूरी प्रणाली को असंतुलित करने की क्षमता होती है । यह अत्यंत महत्वपूर्ण या हमारी नैतिक जिम्मेदारी भी है । आने वाली पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को सुरक्षित रखना है ।

पर्यावरण दो शब्दों के मेल से बना है– 'परि' और 'आवरण' 'परि' का अर्थ है 'चारों ओर' तथा 'आवरण' का अर्थ है 'लबादा' या 'घेरने वाला'। जिसका अर्थ है हमारे चार और उपस्थित सभी वस्तुएँ हमारा पर्यावरण है । हमारा जल, पेड–पौधे, मिट्टी, जंगल आदि सब हमारा पर्यावरण है ।

कहना उचित है कि पर्यावरण वह सब कुछ है जो जीव–जंतुओं को चारों ओर से घेरे रहता है । उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करता है । विभिन्न मानवीय क्रियाकलापों के दुष्परिणाम स्वरूप प्राकृतिक गुण में परिवर्तन आ रहा है और वह नष्ट हो रही है । पर्यावरण का नैसर्गिक गुणवत्ता का ह्रास होने का प्रभाव जीवन चक्र को अधिक मात्रा में प्रभावित करता है । पर्यावरण प्रदूषण मानवीय क्रियाओं के अपशिष्ट उत्पादों से मुद्रव्य एवं ऊर्जा का परिणाम है । यह जल, मिट्टी, वायु की अवांछित संघहन होने की स्थिति है जिसका असर जीवों पर पडता है । यहाँ तक की हमारा जल, वायु, थल भी प्रदूषण से बच नहीं पाया ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार "जब हमारे बाहरी वातावरण में इस प्रकार के पदार्थ मिल जाते हैं, जिनसे वह मानव तथा उसके पर्यावरण के लिए खतरा बन जाता है, तो इस अवस्था को प्रदूषण कहते हैं ।"[1]

पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने में माध्यमों के साथ–साथ मीड़िया की भी अहम भूमिका है । पिछले कुछ वर्षों में भारत में पर्यावरण की रक्षा के लिए कितने आंदोलन शुरू हुए हैं और बाद में, मीडिया पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने और समाज के लिए बेहतर जीवन बनाने के लिए विभिन्न अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण समझौतों के बारे में कई जानकारी देता है ।

मानव का अपरिमित लालच, विज्ञान का विकास, अंधाधुंध दोहन के कारण तेज़ी से बदलते प्राकृतिक संसाधनों और हमारी अत्याधुनिक जीवन शैली के कारण आज हम प्रदूषण के दुष्चक्र में फंस चुके हैं । प्रदूषण की मात्रा दिन व दिन बढ़ जा रहा है, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है । आज हम विकास की ओर जिस तेज़ी से बढ रहे हैं, उसी तेज़ी से हम प्रदूषण के कारण विनाश की ओर बढ रहे हैं । जब हमारे पर्यावरण के नैसर्गिक गुण बदल जाते हैं और उसकी प्राकृतिक गुणवत्ता का ह्रास हो जाता है तो उसे भौतिक प्रदूषण कहते हैं, जो अग्रलिखित हैं –

1. स्थल प्रदूषण
2. जल प्रदूषण
3. वायु प्रदूषण
4. पर्वतीय प्रदूषण
5. अंतरिक्ष प्रदूषण
6. सागरीय प्रदूषण

जिन पदार्थों या कारकों की वजह से प्रदूषण उत्पन्न होता है, उसे 'प्रदूषक' कहते हैं । प्लास्टिक, कार्बन मोनोक्साइड, रासायनिक उर्वरक, सी.एफ.सी, कार्बन डाइऑक्साइड आदि प्रमुख तौर पर प्रदूषक माने जाते हैं जिसके कारण (ozone depletion) ओज़ोन के लिए भी हानिकारक सिद्ध होती है । पर्यावरण से अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जैसे– वायु के प्रदूषित होने, कचरे का उचित प्रबंधन न कर पाना, जल का अभाव, गिरता हुआ भूजल स्तर, वनों का नष्ट होना तथा मिट्टी का मलिन होना आदि ।

प्रदूषण के कारण आज मानव के स्वस्थ जीवन को खतरा पैदा हो गया है । आज वह हवा नहीं रही जिसमें मनुष्य एक लंबी साँस ले सकें । प्रदूषित जल के कारण मनुष्य को अनेक तरह की बीमारियाँ हो रही है । कृषि का भी विनाश हो रहा है, जिससे अनेक कृषकों की ज़िंदगी भी अव्यवस्थित हो रही है । वायु मंडल में ऑक्सीजन की कमी का सीधा प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पडता है । प्रदूषण मानव की संपूर्ण विकास यात्रा को भी प्रभावित करता है ।

"पत्र–पत्रिकाएं समाज का दर्पण होती हैं । समाज में जो हुआ और जो हो रहा है तथा जो होगा– इस त्रिकाल से संबंधित संपूर्ण हिसाव–किताब पत्र–पत्रिकाओं में चित्रित होता है । इस समस्त कार्य के पीछे केवल पत्रकार का विशेष हाथ होता है । पत्र–पत्रिकाओं में समाज को प्रभावित करने की जो क्षमताएं होती हैं, उन समस्याओं का सशक्त स्वर अथवा प्रणेता भी केवल पत्रकार ही है ।"[1] अंग्रेज़ी के जर्नलिज़म का हिन्दी शब्द है पत्रकारिता । मानव जीवन में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण स्थान है । मानव जीवन के कई क्षेत्रों में पत्रकारिता का प्रयोग हैं । जैसे –

[1] एन सी पंत – पत्रकारिता का इतिहास – पृ.सं. आमुख

पत्रकारिता के ज़रिए समाज की सभी जीवन–घटनाओं का विश्लेषण प्रसारित होता है । केवल मनोरंजन नहीं बल्कि सत्य का उद्घाटन करके मानव द्वारा समाज को सही दिशा दर्शाने की कोशिश करते हैं और लोक कल्याण भी इसका उद्देश्य है । आजकल पर्यावरण और प्रदूषण एक ज्वलंत विषय है । पर्यावरण के प्रति जनता के दृष्टिकोण को प्रभावित करने में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । मानव के बीच पर्यावरण जागरूकता बढ़ाने में मीडिया की भूमिका बहुत अहम है, क्योंकि यह भारत के जटिल समाज के एक महत्वपूर्ण भाग तक पहुँचता है । इंटरनेट की तेज़ पहुँच और बहुतायत द्वारा प्रयोग इसमें मदद करती है । विश्व भर के लिए जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणवाद और हरित एवं पर्यावरण–अनुकूल कैसे बनें, इसके बारे में सीखने का प्रमुख संसाधन बन गया है। समकालीन युग में, लोगों के बीच पर्यावरण जागरूकता के लिए इंटरनेट सेवाओं का तेजी से उपयोग किया जा रहा है, ताकि वे तुरंत सार्वजनिक बातचीत में शामिल हो सकें । ट्विटर और फेसबुक जैसी सोशल मीडिया साइटें समाचार, सूचना और लेख साझा करती हैं, इसलिए पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में सीखने में रुचि रखने वालों के लिए यह सहारा देते हैं । इंटरनेट ने पारंपरिक मीडिया और नए मीडिया के अभिसरण के लिए जगह बनाई है, जिससे लोगों को पर्यावरणवाद के बारे में स्वदेशी ज्ञान तक पहुंचने के लिए एक उदार और बहुआयामी संसाधन तैयार हुआ है ।

यह ज्ञात है कि प्रिंट मीडिया, प्रसारण मीडिया और सामाजिक मीडिया पर्यावरण संबंधी मुद्दों पर संवाद कर सकता हैं । मीड़िया लोगों को पर्यावरण की रक्षा के लिए जागरूक करता है । प्रिंट मीडिया के माध्यम से पर्यावरणीय मुद्दों के प्रसार में देरी हो सकती है परंतु प्रसार मीड़िया द्वारा नहीं । राज्य के अंदर फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर जैसे संदेशों की डिलीवरी में देरी न करें । वेब आधारित प्लेटफार्मों के कारण देश या दुनिया भर में उपलब्ध शोध और समीक्षाओं का यह संकलन लेख शिक्षाविदों, मीडिया और पत्रकारिता शोधकर्ताओं और अन्य अधिकारियों को जानने में मदद कर सकते हैं। स्थानीय और वैश्विक स्तर पर, पर्यावरण जागरूकता, मीडिया संचार की वर्तमान स्थिति और भूमिका ऑफ़लाइन में अधिक समाचार और ऑनलाइन मीडिया पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में अधिक जागरूकता पैदा कर सकता है और उनकी अधिक सुरक्षा कर सकता है ।

पिछले कुछ दशकों में मनुष्य की लगातार बढ़ती जरूरतों और लालच के कारण हमारी पर्यावरण स्थिति दिन–ब–दिन खराब होती जा रही है । पर्यावरणीय संकटों में जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, तूफान, हिमखंडों का पिघलना, बाढ़, अम्लीय वर्षा और वनस्पतियों और जीवों का विनाश शामिल हैं । मनुष्य का स्वास्थ्य अब पर्यावरणीय समस्याओं से बहुत खतरा है । प्रदूषण कई प्रकार के कैंसर, श्वसन रोगों और हृदय रोगों का मुख्य कारण है, जो कभी–कभी मौत का भी कारण बन सकते हैं । हर देश के लिए पर्यावरण संरक्षण महत्वपूर्ण है । आज हम पर्यावरण जागरूकता और ज्ञान की कमी के कारण इस समस्या का सामना कर रहे हैं । लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करना इस समस्या का समाधान हो सकता है । पर्यावरण नीति और प्रबंधन में सरकारी कार्रवाई का सार्वजनिक समर्थन, पर्यावरण जागरूकता का लाभ है । शिक्षण और सूचनात्मक कार्यक्रम पर्यावरण जागरूकता बढ़ा सकते हैं । उदाहरणार्थ भारत में करीब 63 फॉरेस्ट कॉलेज हैं । इन्हीं संस्थानों के द्वारा कई शोध पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हो

रहा है । यह प्रणालियों के कारण पूरे संसार तक प्रकृति से संबंधित जानकारियाँ और पर्यावरण संबंधित समस्याओं से अवगत कराते हुए उसके समाधान को भी प्रस्तुत करते हैं । पत्रकारिता के द्वारा बाढ़ के समय बाढ़ की स्थिती में बाढ़ का के समाचार पूरी दुनिया में पहुंचता है । समाचार पत्रों में विशेष रूप में लेख छपने से लोगों को जागरूक करने में सहायता मिलती है । पत्रकार अपने चारों तरफ की समाचारों के प्रति जागरूक रहता है । अतः वह प्रकृति के प्रति भी अधिक सचेत दिखाई पडता है । समाचार पत्रों के संपादकीय में भी पर्यावरण से संबंधित विषयों को महत्व दिया जाता है ।

आज विश्व भर में पर्यावरण प्रदूषण एक महत्वपूर्ण समस्या बन गया है । बढ़ता औद्योगीकरण और शहरीकरण प्रदूषण का मुख्य कारण है । यदि इसे गंभीरता से नहीं लिया गया तो यह विश्व के समक्ष एक विकट समस्या उत्पन्न कर देगा । पर्यावरण संरक्षण का आशय है हमारी धरती को ओजोन क्षरण से बचाना, ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण से बचाना आदि । हमारे पर्यावरण को बचाना और संरक्षित करना प्रत्येक व्यक्ति और सरकार का भी दायित्व होना चाहिए । इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए और इसका मुकाबला व्यक्ति, संस्थाओं और सरकार के संयुक्त प्रभाव से किया जाना चाहिए । पर्यावरण जागरूकता ही पर्यावरण संरक्षण का एकमात्र उपाय है ।

सहायक ग्रंथ सूची

1. डॉ. निशांत सिंह, सुरेन्द्र प्रताप सिंह– प्लास्टिक प्रदूषण : समस्या और प्रबंधन – अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.
2. एन सी पंत– पत्रकारिता का इतिहास –तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.
3. डॉ. सरोज यादव, डॉ. कुसुम यादव– पर्यावरण मुद्दे एवं नीतियाँ – नलंदा प्रकाशन, 2019.
4. अनुभा कौशिक, सी.पी. कौशिक– पर्यावरण अध्ययन– NEW AGE INTERNATIONAL PUBLICATIONS
5. डॉ.ए.एस.सुमेष – समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण विमर्श – अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016.

X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X

आदिवासी विमर्श

डॉ. परमेश्वर जिजाराव काकडे,
सहा. प्राध्यापक हिंदी विभाग,
जनता शिक्षण प्रसारक मंडल सं.
महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद.
Mobile No. 8830934941
Email- kakdepj@gmail.com

भूमिका :

आदिवासी विमर्श एक अस्मितामूलक विमर्श है जो बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरू हुआ । इसके केंद्र में आदिवासियों के जल, जंगल, भूमि और जीवन की चिंताएं समाहित हैं । ऐसा माना जाता है कि सन् 1991 के बाद भारत में शुरू हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार व्यवस्था ने भी आदिम काल से जमा हुई आदिवासी संपत्ति की लूट का मार्ग प्रशस्त किया । विशाल और बहुत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय और स्वदेशी कंपनियों ने आदिवासी समुदायों को उनके पानी, जंगल और जमीन से बेदखल कर दिया है । इससे आदिवासी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ । झारखंड, छत्तीसगढ़, दार्जिलिंग आदि क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग दिल्ली, कोलकाता आदि बड़े शहरों में आने को मजबूर हुए । इन आदिवासी लोगों के पास न तो धन था । शहरों में इनको घरेलू नौकर बनने के लिए मजबूर किया जाता था । विशाल महानगर ने उनकी संस्कृति, लोक गीतों और साहित्य को भी निगल लिया । नई पीढ़ी के कुछ आदिवासी लोगों ने अवसर का लाभ उठाकर सत्ता हासिल की । उन्होंने सचेत रूप से अपने समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए आवाज उठाना शुरू कर दिया । उन्होंने संगठन भी बनाए । आदिवासियों ने अपने लिए इतिहास को फिर से खोजा । उन्होंने अपने नेताओं को पहचाना । इसने एक शक्तिशाली आदिवासी साहित्य को भी जन्म दिया ।

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, 'आदि' और 'वासी' आदि का अर्थ है 'देशी' और 'वासी' का अर्थ है 'निवासी' इसलिए आदिवासी का अर्थ है पृथ्वी के मूल निवासी, जो घने जंगलों, ऊंचे पहाड़ों और सुदूर घाटियों में रहने वाले लोग । आदिवासी वे हैं जो सभ्य दुनिया से दूर पहाड़ों और जंगलों में दूर-दराज के स्थानों में रहते हैं, एक ही आदिवासी बोली का उपयोग करते हैं और ज्यादातर मांसाहारी और अर्ध-नग्न होते हैं । आदिवासी का शाब्दिक अर्थ आदिकाल से देश में रहने वाली जाति है । भारत में आदिवासियों को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे आदिवासी, देशी, जनजाति, वनवासी, जंगल, जनजाति, जंगली आदि । "आदिवासी विमर्श आदिवासी की पहचान, उसके अस्तित्व के संकट और उसके खिलाफ चल रहे प्रतिरोध पर भी एक साहित्य है । यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के साथ भेदभाव के खिलाफ है । यह जल, जंगल, भूमि और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग करता है ।"[1] "आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो । आदिवासी साहित्य को विभिन्न जगहों पर विभिन्न नामों से जाना जाता है। यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकन-अमेरिकन लिटरेचर, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिटरेचर, तो अंग्रेजी में इंडीजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं । भारत में इसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में

सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है ।"[2] आदिवासी साहित्य लेखन विविधताओं को अपने अंदर समेटे हुए है । समृद्ध मौखिक साहित्य परंपरा का लाभ भी आदिवासी साहित्यकारों को मिला है। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, यात्रा वृत्तांत आदि प्रमुख विधाओं में आदिवासी एवं गैर–आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन और समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है । आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक सामूहिकता में विश्वास करता है, अतः उसकी परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और प्रतिरोध आदि में सामूहिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है । स्त्री–विमर्श एवं दलित– विमर्श की भाँति आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन की कोई केन्द्रीय विधा नहीं है । इस संदर्भ में गंगा सहाय मीणा का मानना है कि– "आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है।"[3] आदिवासी साहित्य की परंपरा का अध्ययन करने के लिए आदिवासी साहित्य के स्रोतों का अध्ययन आवश्यक है । इस संदर्भ में वंदना टेटे का कहना है कि, "आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़–चेतन, सभी कुछ सुंदर है । वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है । उसकी चिंताओं में पूरी सृष्टि, समष्टि और प्रकृति है। जिसका एक प्रमुख अंग इन्सान भी है ।"[4] सबसे पहले यह रेखांकित करना जरूरी है कि हमें इस विषय पर साहित्य के पूर्व–निर्धारित प्रतिमानों और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सोचना चाहिए । हमारी पारंपरिक समझ यह है कि सबसे अच्छा साहित्य एक महानगर में एक प्रमुख भाषा में एक प्रसिद्ध प्रकाशक द्वारा प्रकाशित, सम्मानित, प्रशंसित, गैर–पाठ्यचर्या पुस्तक है । इस प्रक्रिया में अक्सर साहित्यिक पुस्तकों की चर्चा होती है । आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर विचार करते हुए हमें इस प्रथा को छोड़ना होगा । तभी हम आदिवासी साहित्य के हस्ताक्षर स्रोत सामग्री का चयन कर सकेंगे और इसकी परंपराओं का पता लगा सकेंगे । आदिवासी भाषाओं और मौखिक परंपराओं में रचित साहित्य आदिवासी साहित्य का प्राथमिक स्रोत है । मुद्रित भाषा में लिखे गए आदिवासी साहित्य को केवल हिंदी में कहना उचित नहीं है । मौखिक साहित्य इसका आधार है । आदिवासी साहित्य की परंपरा को तीन भागों में बांटा जा सकता है:

1. पुरखा साहित्य।
2. आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा ।
3. समकालीन हिंदी आदिवासी लेखन।

पुरखा साहित्यः–

यह साहित्य आदिवासी दर्शन और साहित्य की नींव है । पुरखा साहित्य आदिवासी समाज में हजारों वर्षों से चली आ रही मौखिक साहित्य की परंपरा है । इसे 20 वीं सदी में संकलित, संपादित और प्रकाशित भी किया गया है । आदिवासी विचारक इस मौखिक परंपरा को मौखिक साहित्य या लोक साहित्य के स्थान पर पुरखा साहित्य कहते हैं । इसके पीछे एक अहम तर्क है । पहली बात तो यह कि मौखिक साहित्य कहने से पता ही नहीं चलता कि कैसा मौखिक साहित्य? दुनिया के सभी समाजों में लिखित से पहले मौखिक साहित्य की परंपरा रही है । इसके अलावा, आदिवासी विचारक आदिवासी मौखिक परंपराओं को पैतृक साहित्य कहते हैं । इस प्रक्रिया में वे इसे लोक साहित्य से अलग करते हैं । इस सन्दर्भ में आदिवासी विचारक वंदना टेटे लिखती हैं कि चूँकि जनजातीय समाज में लोक और विज्ञान में बाहरी समाज की तरह कोई अंतर नहीं है, इसलिए साहित्य को भी विभाजित नहीं किया जा सकता है । चूंकि आदिवासी समाज और संस्कृति में पूर्वजों का बहुत महत्व है और मौखिक परंपरा में पाए जाने वाले गीत, कहानियाँ आदि भी पूर्वजों द्वारा रचित हैं, इसलिए इस मौखिक परंपरा को सामूहिक रूप से पुश्तैनी साहित्य कहा जाना चाहिए ।

पुरखा साहित्य की एक समृद्ध परंपरा सभी आदिवासी भाषाओं में मौजूद है । इसके माध्यम से हम उनके जीवन–दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्य–विश्वास आदि को जान सकते हैं । इसलिए आदिवासी जीवन को जानने के लिए पुश्तैनी साहित्य का संग्रह और संरक्षण करना बहुत जरूरी है । इस दिशा में विद्वानों ने थोड़ा बहुत काम किया है लेकिन बहुत काम किया जाना बाकी है । पुरखा साहित्य की परंपरा देश में 300 से अधिक आदिवासी भाषाओं में फैली हुई है । इसके संकलन और संपादन में बहुत सावधानी की आवश्यकता है । अक्सर हम अपने पूर्वाग्रहों के साथ संग्रह शुरू करते हैं और हमारे पूर्वाग्रह पाठ अनुसंधान के बीच में होते हैं । संकलन के लिए जनजातीय दर्शन और संबंधित भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। उपलब्ध पुरखा साहित्य में दो–तीन लक्षण सामान्य हैं – पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता की भावना, प्रकृति और प्रेम के प्रति गहरी संवेदनशीलता, बाहरी समाज के हमलों के प्रति जागरूकता, अपनी परंपरा और संस्कृति की रक्षा करने की भावना आदि । आदिवासियों पर बाहरी समाजों के हमलों का इतिहास काफी पुराना है और इसके प्रति आदिवासी पूर्वजों की जागरूकता भी उतनी ही पुरानी है । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"रास्ते में एक जोड़ा जो लूदम फूल है
उस फूल को ऐ बेटी, किसने तोड़ लिया?
रास्ते में अटल फूल की जो कतार है
हे बेटी, किसने छिनगा लिया?
चमचमाते हुए शिकारी
शिकारियों ने फूल तोड़ लिया
झलकते हुए अहेरी
अहेरियों ने डाल को छिनगा दिया
शिकारियों ने जो फूल को तोड़ा
हे बेटी, चोटी से ही तोड़ लिया ।
अहेरियों ने जो डाल को छिनगा दिया
सों हे बेटी, नीचे से ही छिनगा दिया !
शिकारियों ने जो फूल को तोड़ा
हे बेटी, उसकी फुनगी मुरझा गई
अहेरियों ने जो छिनगा दिया,
हे बेटी, उसका तना कुम्हला गया !"
बांसुरी बज रही है

(मुंडारी गीतों का संकलन) – जगदीश त्रिगुणायत

उपरोक्त गीत मुंडारी पुरखा गीत का हिंदी अनुवाद है । ऐसी सामग्री सभी जनजातीय भाषाओं में बिखरी हुई है । इसके प्रति एक सही दृष्टिकोण विकसित करने और इसे बचाने की आवश्यकता है ताकि आदिवासी दर्शन और साहित्य, साहित्य परंपरा से अवगत हो सकें ।

आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य की परंपराएं :

आदिवासी भाषाओं में लिपियों का विकास लगभग डेढ़ सौ साल पहले शुरू हुआ था । एक दर्जन से अधिक आदिवासी भाषाओं की लिपियाँ अभी तक तैयार नहीं हुई हैं । कई आदिवासी भाषाओं ने पड़ोसी या बड़ी भाषा की लिपि को अपनाया है ।

आदिवासी भाषाओं में लिखने और छापने की परंपरा भी सौ साल से अधिक पुरानी है । इस परंपरा को और जांच की जरूरत है । मौजूदा स्रोत सामग्री के अनुसार, मेनस ओडे द्वारा 'मटुरा कहानी' नामक मुंडारी उपन्यास पहला आदिवासी उपन्यास है । यह 20 वीं सदी के दूसरे दशक में लिखा गया था । इसके एक हिस्से का हिंदी में अनुवाद 'चलो चाय बागान' शीर्षक से किया गया था ।

आदिवासी भाषाओं में लिखे गए साहित्य का महत्व यह है कि भले ही इसमें ग्रंथ बाहरी समाजों और भाषाओं से लिए गए हों, लेकिन लेखक अपनी मातृभाषा में लिख रहा है, इसलिए व्यक्त विचार और दर्शन में मौलिकता बनी हुई है । उत्तर पूर्व की खासी, गारो आदि भाषाओं में वीर गाथाओं की लंबी परंपरा है । इसका धीरे–धीरे हिंदी जैसी अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है । अनेक जनजातीय भाषाओं के लेखन में जाए बिना जनजातीय साहित्य के बारे में गैर–आदिवासी भाषाओं में मिलने वाली सामग्री पर आधारित एक राय अधूरी और भ्रामक होगी । अब हर साल आदिवासी भाषाओं में सैकड़ों किताबें प्रकाशित होती हैं । हालांकि, स्पष्ट समझ के अभाव में इसे आदिवासी लोक साहित्य कहा जाता है ।

समसामयिक हिंदी जनजातीय लेखन :

पुरखा साहित्य और आदिवासी भाषाओं के लिखित साहित्य से प्रेरणा लेकर उन्होंने विदेशी साहित्य के प्रभाव में हिंदी, बांग्ला, तमिल, मलयालम, उड़िया आदि प्रमुख भाषाओं में भी लिखना शुरू किया । हर भाषा के शुरू होने के समय में थोड़ा सा अंतर होता है । हिंदी में इसकी शुरुआत तीन दशक पहले से मानी जा सकती है । हिंदी लेखकों के प्रभाव में आदिवासियों ने मुंडारी, संताली, खड़िया आदि भाषाओं को छोड़कर हिंदी में लिखना शुरू किया । यद्यपि उनकी अधिकांश रचनाएँ छोटे–छोटे प्रकाशनों में छपी हैं या अप्रकाशित हैं, लेकिन पिछले तीन दशकों में हिंदी में सक्रिय आदिवासी साहित्यकारों की संख्या कई दर्जन है। कविताओं के अलावा, उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं, उनमें से कुछ ने व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत आदि में अपना हाथ आजमाया है । हिंदी आदिवासी कविता में पहला नाम सुशीला समद का है लेकिन इसके बाद इसमें निरंतरता का अभाव दिखाई देता है । इसलिए हम रामदयाल मुंडा की कविताओं के साथ समकालीन हिंदी आदिवासी कविता की शुरुआत पर विचार कर सकते हैं, जिन्होंने मुंडारी के साथ हिंदी में कविताएं भी लिखीं, उसके बाद ग्रेस कुजुर रोज केरकेट्टा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, विजय सिंह मीणा, ज्योति लकड़ा, अनुज लुगुन, जसिता केरकेट्टा आदि उल्लेखनीय नाम हैं । कहानी लेखन के क्षेत्र में वाल्टर भेंग्रा, तरुण, पीटर पॉल एक्का, रोज केरकेट्टा, मुंगल सिंह मुंडा, विजय सिंह मीणा आदि प्रमुख हैं । उन्होंने आदिवासी साहित्य में सैकड़ों कहानियों और लगभग आधा दर्जन उपन्यासों का योगदान दिया है । भारत के आदिवासियों की समग्र स्थिति वही है जो आज़ादी से पहले थी वहीं आजादी के बाद भी देखी जा सकती है । हालाँकि, भारतीय संविधान ने आदिवासियों को कई अधिकार प्रदान किए हैं । आदिवासी जीवन पर आधारित कई उपन्यासों में इन विसंगतियों का चित्र मिलता है । व्यंग्य और कहानी दोनों में शंकरलाल मीणा सक्रिय हैं । हरिराम मीणा ने यात्रा वृतांत और संस्मरण भी लिखे है । "स्वतंत्र भारत के संविधान में दलित आदिवासी गरीबों को आत्मसम्मान से जिने का अधिकार प्रदान किया गया है फिर भी स्वार्थ लिप्त भ्रष्ट लोग और सामंती प्रवृत्ति वाले ठेकेदार षडयंत्र से, बेईमानी से कूटनीति से दलित आदिवासी गरीबों के आत्मसम्मान के साथ खिलवाड़ करते हुए इनकी इज्जत को नीलाम करने की पूरी व्यवस्था करते हैं ।"[5]

निष्कर्ष–

समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्शो में आदिवासी विमर्श एक प्रमुख विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है । समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श अपनी ठोस उपस्थिति दर्ज कर रहा है । आदिवासी विमर्श में इस समय आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों तरह के साहित्यकार अपने लेखन से इस विमर्श को नई ऊंचाईयाँ दे रहे हैं । निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि समकालीन आदिवासी लेखन अपनी पैतृक परम्पराओं तथा बाह्य समाज एवं साहित्य के साथ अन्तःक्रिया कर तथा

आदिवासी जीवन एवं दर्शन को अभिव्यक्त कर अपनी सार्थक उपस्थिति को अभिव्यक्त करते हुए सृजन के क्षेत्र में नये प्रयोग कर रहा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी साहित्य हिंदी जैसी गैर–आदिवासी भाषाओं में न केवल एक उभरती हुई प्रवृत्ति और साहित्यिक आंदोलन है, बल्कि आदिवासी भाषाओं में इसकी गहरी जड़ें और एक लंबी परंपरा है । इसके बारे में एक राय बनाने के लिए पूरी परंपरा का अध्ययन आवश्यक है ।

सन्दर्भ :

1. https://hi.wikibooks.org/wiki
2. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
3. मीणा, गंगा सहाय (सं.), आदिवासी साहित्य विमर्श, पृष्ठ सं. 10
4. टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन, पृष्ठ सं. 87–88
5. डॉ. प्रकाश चन्द्र मेहता, आदिवासी संस्कृति एवं प्रथाएँ–पृष्ठ सं. 171.

X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में चित्रित स्त्री चेतना

माधनुरे राहुल
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद,
Email. Rahulmadhnure358@gmail.com
Phone no: 6305397692

भूमिका–

भारतीय हिन्दू समाज व्यवस्था द्वारा निर्मित वर्ण–व्यवस्था एवं जातिभेद के प्रतिरोध की उपज है दलित साहित्य । जब हम दलित साहित्य के आन्दोलन की बात करते हैं, तो भारतीय समाज व्यवस्था में दलित स्त्री लेखन प्रमुखता से मनु द्वारा निर्धारित नैतिकता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करता हुआ दिखाई देता है । वर्तमान में डॉ. आंबेडकर के विचारों से प्रभावित होकर दलित स्त्री अपने आत्मसम्मान की बात कर रही है । वर्तमान समय में दलित स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं तथा वह पुरुष के समान ही आर्थिक, सामाजिक तथा राजनितिक क्षेत्रों में समानता की मांग करने लगी है । शिक्षित दलित नारी बंधन मुक्ति की प्रबल भावना से सामाजिक कुरीतियों का विरोध करने लगी है । साथ ही ग्रामीण महिलाएँ भी अपने अधिकार की लडाई लड़ रही है । शैक्षिक क्षेत्र में पुरुषों के समान अपना योगदान दे रही है । वर्तमान समय मी प्रमुख महिला लेखिकाओं में से एक सुशीला टाकभौरे है । जिनका दलित स्त्री चिन्तक के रूप में महत्वपूर्ण योगदान है, उनका व्यक्तित्व प्रभावकारी है । इनके साहित्य में दलित और स्त्री चेतना का स्वर उभरकर प्रस्तुत दिखाई देता है । वर्तमान समय में पिछड़े वर्ग के समस्या को उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने का कार्य किया है ।

बीज शब्द– दलित समाज, दलित स्त्री, जाति व्यवस्था, स्त्री चेतना का स्वर, आंबेडकर कि वैचारिकता, शैक्षणिक चेतना,

सामाजिक कार्य और सावित्रीबाई फूले की वैचारिकता

भारतीय समाज में स्त्री चेतना का स्वर अत्यंत ज्वलंत है । जैसे शिक्षा के सम्बन्ध में सावित्रीबाई फुले का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । उसी तरह वर्त्तमान समय में स्त्री चेतना के लिए साहित्यकारों की भूमिका महत्वपूर्ण है, उन्होंने स्त्री चेतना का स्वर अपने साहित्य के माध्यम से समाज तक पहुँचाया है । जैसे प्रस्तुत उपन्यास में महिमा एक महिला सभा में कहती है कि "सावित्रीबाई फुले हमारी प्रेरणा स्त्रोत हैं? यहाँ उपस्थित महिलाओं में ऐसी कितनी महिलाएं है जो सावित्रीबाई फुले की तरह दलित–पिछड़ी जाति की लड़कियों को शिक्षा दिलवाने का प्रयत्न कर रही है या उनकी शिक्षा में अपना सहयोग दे रही है? सावित्रीबाई फुले अभियान को हम स्त्रियों को पूरा करना है ।"[1] इस प्रकार लेखिका ने महिमा के माध्यम से सावित्रीबाई फूले के महत्त्व को रेखांकित किया है साथ ही समाज में बढ़ते महिलाओं पर बलात्कार महिलाओं का दैहिक शोषण इस अन्याय अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने को कहती है । जैसे कि "सावित्रीबाई फुले ने अपने समय में ये काम बहुत संघर्ष के साथ, समाज का विरोध सहकर किए थे क्योंकि पहले के समय के लोग अधिक धर्मान्ध, कर्मकांडी और स्त्री विरोधी थे । आज के समय में ये कार्य इतना कठिन नहीं है । इसके लिए एकता और संगठन की जरुरत है । हम एक साथ मिलकर, स्त्री शोषण का विरोध करके, स्त्रियों को न्याय दिला सकते हैं ।"[2] इस प्रकार उपन्यास में स्त्री चेतना और सावित्रीबाई फूले के योगदान को महत्वपूर्ण माना गया है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने समाज में महिलाओं की बदलती स्थिति को चित्रित किया है । आज महिलाएँ समाज में प्रचलित

पुरानी परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ रही हैं । वर्णवादी पुराणपंथी देश अब शिक्षा और वैज्ञानिक प्रगति से जुड़कर आधुनिक बनता जा रहा है, इसलिए महिलाएँ भी वर्णभेद और जातिभेद का विरोध करने के लिए पुरुषों के साथ सडकों पर उतरने लगी हैं । नए विचारों की स्थापना के लिए प्रगति–परिवर्तन और समाज आन्दोलन के कार्य तेजी से चल रहे हैं । जैसे महिमा भारती कहती है कि "महाराष्ट्र के साथ पूरा उत्तर भारत और पूरा दक्षिण भारत ऐसे कार्यक्रमों से प्रभावित हो रहा है । धीरे–धीरे पूरे देश में फिर से नवजागरण की लहर दौड़ने लगी है । गाँव–गाँव और शहर–शहर के दलित पिछड़े लोग और शोषित महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए अपने गाँव से दिल्ली राजधानी तक पहुँच रहे हैं ।"[3] इस प्रकार वर्तमान समय में दलित समाज की महिलाएँ मनुवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए, अपने आत्मसम्मान और अधिकार की लडाई लड़ रही हैं । शिक्षा के माध्यम से जागृत होकर विविध कार्यक्रमों द्वारा दलित समाज में परिवर्तन लाने का प्रयत्न कर रही है । जगह–जगह धरने, प्रदर्शन और आन्दोलन करके सवर्णवादी व्यवस्था का विरोध कर रही हैं ।

डॉ. अंबेडकर कहते है कि शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो अंबेडकर के विचारों को मानते हुए तीनों ने मिलकर इस पद के लिए अपना संघर्ष करते हुए इस उपन्यास की नायिका महिमा भारती गुस्से से कहती है कि "आपने हमें धोखे में रखा हमारे साथ गद्दारी की, हमें बेवकूफ बनाते रहे, तुम्हे शर्म नहीं आती, ऐसे नीच हरकत करते हुए? इंसानियत नाम की कोई चीज है तुम्हारे पास? बैमानी की रोटी खाते हो बैमान... और गुस्से के साथ महिमा, अपने हाथ की चप्पल पांडे जी के सामने रखी टिन के टेबल पर फटा–फट मरने लगी । पांडे आवाज से ही भयभीत हो गए ।"[4] इस प्रकार महिमा भारती अपने अधिकार के लिए संघर्ष करती है क्योंकि अपने अधिकार का हनन होते हुए वह देख नहीं सकती है । इसलिए क्रोध में आकर पांडे जी पर भड़क जाती है । तब राकेश पांडे को महिमा भारती का यथार्थ ज्ञान हुआ, प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने शैक्षणिक चेतना को चित्रित किया है । इस उपन्यास की मीरा की एकमात्र बेटी माया मैट्रिक तक की पढाई कर सकी, आगे की पढाई में उसका मन नहीं लगा उसका अधिकतर समय पत्र–पत्रिकाएँ एवं टेलीविजन में चला जाता है । "मीरा और सुरजन की बड़ी अभिलाषा थी कि वे अपनी बेटी को डॉक्टर बनाएँगे । उन्होंने उसे विज्ञान विषय लेकर पढाई करने के लिए मजबूर किया । माया बारहवी कक्षा में फेल होती रही । इसके बाद उसने साइंस पढ़ने से साफ इंकार कर दिया । हताश होकर सुरजनसिंह ने उसे आर्ट्स के विषय लेकर बारहवीं कक्षा की परीक्षा में बैठाया । पास होने के बाद उसे बी.एड. की शिक्षक ट्रेनिंग करवाई । ट्रेनिंग के बाद उसे जल्द ही प्राइमरी में शिक्षिका की नौकरी मिल गयी । सुरजन ने इस बात से ही संतोष कर लिया कि "मेरी बेटी न सही, मेरे बड़े भाई की बेटी महिमा उच्च शिक्षा पा रही है । आगे चलकर वह उच्च पद पर नौकरी करेगी और अपने खानदान का नाम रोशन करेगी ।"[5] इस प्रकार लेखिका ने अपने उपन्यास में शैक्षणिक चेतना को अभिव्यक्त किया है । यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों पर जबरदस्ती थोपी हुई शिक्षा काम नहीं आती । क्योंकि जिस विषय में रूचि न हो उसमें सफलता मिलना बहुत कठिन है । मीरा और सुरजन माया को डॉक्टर बनाना चाहते थे इसलिए उसे साइंस के विषय लेकर जबरदस्ती पढ़ने को कहा था । लेकिन माया की रूचि साइंस के विषय में नहीं थी, इसलिए वह बार–बार फेल हो रही थी । और शिक्षा से दूर जा रही थी । अतः पिता ने आर्ट्स विषय लेकर पढाया तो वह पास होकर बी.एड की ट्रेनिंग लेकर वह एक शिक्षिका बन जाती है । इसलिए शिक्षा के लिए रूचि का होना अत्यंत आवश्यक है । उपन्यास में महिमा एक प्रतिभाशाली छात्रा है वह अपनी मेहनत से उच्च शिक्षा प्राप्त करती और अपने परिवार का सपना पूरा करती है । जैसे कि "महिमा खुश थी । अब वह उस मुकाम तक पहुच गई थी, जहाँ अच्छी नौकरी के साथ मान–सम्मान और धन–वैभव सब कुछ मिल सकता है । मैट्रिक के बाद दिल्ली विश्विद्यालय से उसने बी.ए. और एम.ए. की डिग्री प्राप्त की थी । हिंदी साहित्य में प्रथम श्रेणी में एम.ए. करने के बाद उसने पीएचडी की डिग्री प्राप्त की । इसके साथ ही वह समाचार पत्रों में नौकरी की तलाश करने लगी थी ।"[6] इस प्रकार महिमा अपनी लगन से उच्च शिक्षा हासिल करके नौकरी की तलाश करने लगती है और सफलता भी प्राप्त

करती है । महिमा ने जब उच्च शिक्षा प्राप्त की तब उसने अपने समाज को अतीत से परिचित करवाया जिसमें मुख्य रूप से उसने दशहरे के बारे में समझाते हुए कहती है कि "सम्राट अशोक का धम्म चक्र परिवर्तन दिन हर वर्ष मनाया जाता है । डॉ. अंबेडकर की दीक्षाभूमि नागपुर में पूरे देश से हजारों की संख्या में लोग आकार इस दिन का उत्सव मनाते है । इन दिनों पूरा नागपुर शहर पूरी तरह बौद्धमय बन जाता है । बाहर से आए हजारों लोगों के लिए नागपुर के अंबेडकरवादी लोग भोजन और निवास की व्यवस्था करते हैं । विजयादशमी के एक दिन पहले और एक दिन बाद तक दीक्षाभूमि में अनेक बौद्धिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं । डॉ. अंबेडकर के सामाजिक आन्दोलन के और तथागत गौतम बुद्ध की वंदना के गीत संगीत का भी आयोजन होता है ।"[7] इस प्रकार महिमा धम्म चक्र परिवर्तन दिन की हकीकत शोभा के माता–पिता को समझाती है । अतः कहा जा सकता है कि दलित समाज में शिक्षा की कमी होने के कारण उन्हें सच्चाई से रू–ब–रू नहीं करवाया जाता है । क्योंकि इन लोगों को सच्चाई से परिचित करवाने वाला कोई नहीं दिखाई देता है । अगर दलित समाज के पढ़े–लिखे युवक–युवतियाँ गाँव–गाँव जाकर महिमा भारती की तरह मार्गदर्शन करे तो, शोभा जैसे अनेकों के दिल में परिवर्तन लाकर बाबासाहब के सपनों को पूर्ण किया जा सकता है । इस प्रकार दलित समाज के लिए धम्मचक्र परिवर्तन दिन का अपना एक महत्त्व है क्योंकि इसी दिन डॉ. अंबेडकर ने हिन्दू धर्म को त्याग कर अपने लाखों अनुयाइयों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी ।

प्रस्तुत उपन्यास में महिमा एक अध्यापिका बनकर समाज कार्य के साथ शिक्षा का भी अपने समाज में महत्व बताती है । जिस प्रकार शोभा के माता–पिता उसकी पढाई के बजाए उसकी शादी की चिंता में लगे रहते है लेकिन महिमा के समझाने के बाद वे समझ जाते है । महिमा की बातों से प्रभावित होकर धन्नो कहती है कि "नहीं मैडम, मैं अपने बच्चों की पढाई कभी नहीं रुकने दूंगी।"[8] इस प्रकार लेखिका ने महिमा के माध्यम से दलित समाज में शैक्षणिक चेतना के महत्त्व को अभिव्यक्त किया है । उपन्यास में दलित समाज के प्रति शैक्षणिक जागरूकता का स्वर सुरजन, महिमा भारती, धीरज कुमार, शोभा आदि पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है ।

अतः यह कह सकते है कि उपन्यास में भारतीय महिला की यथार्थ स्थिति को अभिव्यक्त किया है । वर्तमान समय की महिलाएँ किसी रूप में कमजोर नहीं है । उनमें सामाजिक चेतना का स्वर जागृत हो चुका है और समाज कार्य करने के लिए सामाजिक संगठनों से जुड़कर कार्य कर रही है साथ ही अनपढ़ और शिक्षित घरेलु काम करने वाली महिलाओं को जागृत कर रही है जैसे उपन्यास में महिमा भारती, माया, उषा बजाज, शोभा आदि साहसी महिलाएँ किसी रूप में कमजोर नहीं है । महिमा भारती एक सफल सामाजिक कर्यकर्ता के रूप में उभरकर आयी है इसी प्रकार उषा और शोभा भी प्रतिभाशाली छात्रा है उनमें कुछ कर दिखाने की उमंग है । यही स्त्री चेतना स्वर है जो वर्तमान समाज की महिलाओं की यथार्थ स्थिति है । इस वास्तविकता को लेखिका ने बड़ी मार्मिकता के साथ अभिव्यत किया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. सुशीला टाकभौरे, तुम्हें बदलना ही होगा, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015 पृ,82
2. वही, पृ,82
3. वही, पृ,12
4. वही, पृ,24
5. वही, पृ,13
6. वही, पृ,16
7. वही, पृ,58
8. वही, पृ,57

ज्योत्स्ना मिलन के उपन्यास विधा में चित्रित नारी की समस्याएँ

कुमारी शकुंतला दशरथ कुंभार
शोध छात्रा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
ई मेल– shakuntalakumbhar10@gmail.com
संपर्क : 7745885113/9822911235

शोध सारः आज तक हिंदी साहित्य जगत में अनेक समस्याओं पर विचार मंथन हुआ है । मनुष्य से जुड़ी हर समस्या को हिंदी साहित्य का विषय बनाया गया है । उसमें अगर नारी जीवन पर विचार किया जाए तो नारी जीवन पर अनेक समस्याओं का चित्रण हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं के माध्यम से हुआ है । लेकिन ज्योत्स्ना मिलन के साहित्य की नारी आम नारी है, जिसने अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना किया है । आम नारी से जुड़ी हर एक समस्या को बारीकी से चित्रित करने का काम ज्योत्स्ना मिलन ने किया है, जो अन्य लेखकों से उनको अलग बना देता है और यही समस्याएँ आज नारी जीवन की प्रासंगिकता को भी दर्शाती है तथा आम नारी जीवन के यथार्थता को स्पष्ट करती है । विवेच्य साहित्य में विधवा की समस्या, सामाजिक समस्या, अनमेल विवाह, अंधविश्वास, भावनात्मक समस्या आदि समस्याओं का चित्रण किया है ।

प्रस्तावनाः

मनुष्य जीवन संघर्षों से भरा हुआ है । जीवन के हर मार्ग पर जीवन जीते समय उसे संघर्ष करना पड़ता है । और बिना संघर्ष के मनुष्य जीवन की कोई सार्थकता नहीं होती । मनुष्य वर्ग में अगर नारी जीवन पर विचार किया जाए तो अन्य जीवों से ज्यादा संघर्ष तथा मुश्किलें नारी जीवन में आती है । जन्म से लेकर मृत्यु तक का उसका सफर संघर्ष से तथा समस्याओं से भरा हुआ है । हर पड़ाव पर जीवन उसके लिए एक चुनौती बन जाता है । जीवन का हर पथ उसके लिए समस्याओं से भरा होता है । ज्योत्स्ना मिलन का साहित्य भी अधिक मात्रा में नारी केंद्रित है । नारी से जुड़ी अनेक समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से किया है ।

ज्योत्स्ना मिलन द्वारा लिखित 'अपने साथ' इस उपन्यास की प्रमुख पात्र केका की पड़ोसन अम्मा की बहू, बिल्वा और उसके बीच के संबंध को लेकर सास–बहू की समस्या के माध्यम से सामाजिक समस्या को दर्शाया है । जब केका अम्मा से बात कर रही थी तो, बिल्वा को लगा कि केका का इस तरह का लगाव मेरे साथ भी होना चाहिए । इसीलिए वह केका को पराठे बना कर देने के लिए कहती है । मगर केका बात को टाल देती है । ऊपर से अम्मा कहने लगती है, "आज की बहू में बेटों के समान, उसकी माँ को माँ तो कहती है, मगर सास के साथ माँ जैसा व्यवहार बिलकुल नहीं करती ।"[1] इस बात को चिढ़ती हुई केका इसका जवाब देती है, बहू बेटी की तरह पेश आनी चाहिए तो सास को भी माँ की तरह बर्ताव करना होगा । यहाँ सास–बहू के बिगड़ते संबंधों की समस्या को चित्रित किया गया है । जो आज भी भारतीय समाज के भारतीय परिवारों की सबसे बड़ी वास्तविक समस्या है ।

'केशर माँ' इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने पारिवारिक समस्या को चित्रित किया है । जहाँ बड़े परिवार तथा निर्धन परिवार की समस्या आती है । परिवार बड़ा और निर्धन होने के कारण इस उपन्यास का प्रमुख पात्र केशर को ऐसे व्यक्ति से

शादी करनी पड़ती है, जिसकी उम्र पैंतीस साल है, जो अधेड़ उम्र का है और उसके माँ–बाप को इस बात का पता है कि केशर की शादी हो जाने के बाद कुछ दिनों के बाद ही उसके पति का देहांत हो जाएगा । इतनी बड़ी सच्चाई पता होने के बावजूद भी केशर का विवाह उस व्यक्ति से किया जाता है जो केशर से कई गुना उम्र में बड़ा है । लेखिका ने केशर की स्थिति से भारतीय परिवारों की समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया है ।

'अपने साथ' इस उपन्यास के माध्यम से ज्योत्स्ना जी ने सामाजिक समस्या को चित्रित किया है । इस समाज में जब एकाध औरत अकेली दिखती है तो आने–जाने वाले लोग उसके साथ किस तरह पेश आते हैं । उसके साथ किस तरह का व्यवहार करते है यह चित्रित किया है । एकाध औरत अगर रास्ते में अकेली नजर आई तो उसे कई तरह के सवाल पूछे जाते हैं । उसे परेशान किया जाता है । इस उपन्यास की प्रमुख नारी केका के साथ भी ऐसा ही होता है । एक दिन केका जब रात को अपने बेटे के साथ वापस घर लौट रही थी, तब बीच में उनके पड़ोसी सिन्ना साहब मिल जाते हैं, जो उसे पूछ लेते हैं । "आप अकेली कैसी ?"[2] उनके इस सवाल के पीछे मानो कई सारे सवाल खड़े थे । उस सवाल के पीछे यह भी सवाल था आपका पति कहाँ है? कब आएगा? कहाँ गया है? ऐसी बहुत बड़े सवालों से भरी श्रृंखला हो सकती थी और इन सवालों के सही–सही जवाब केका देना नहीं चाहती थी । अगर सच बताया जाए तो भी कई सारे सवाल उठ सकते थे और झूठ बोला जाए तो भी इस परिस्थिति से बचा नहीं जा सकता था । लेकिन इस तरह की बेहूदा स्थिति से बचने के लिए वह झूठ ही बोल देती है । यही स्थिति कई बार हमारी भारतीय स्त्रियों की होती रही हैं और इसे एक वास्तविक समस्या के रूप में लेखिका ने चित्रित किया है । जिसे भारत की हर नारी को किसी ना किसी रूप में इस समस्या का सामना जरूर करना पड़ता है ।

'अपने साथ' इस उपन्यास में एक सोलह साल की लड़की का विवाह बिरजू से हुआ था । बिरजू एक बनिया था । घर वाले भी काफी सख्त थे । बिरजू की पत्नी गर्भवती थी, तब उसके मायके वाले कई बार उसे बुलाने के लिए आए, मगर उसकी सास ने उसे भेजने से इनकार कर दिया । सास को लगता था, अगर बहू चली जाएगी तो घर का सारा काम कौन करेगा? उस बेचारी की शादी को केवल एक ही साल हुआ था । परसों अचानक उसकी मौत हो जाती है । काम का बोझ उठाते–उठाते वह मर गई और उसके पेट में जो बच्चा था वह भी मर गया । यहाँ अनमेल विवाह की समस्या को चित्रित करते हुए ज्योत्स्ना जी ने समाज में आज भी चली आ रही अनिष्ट प्रथाओं को तथा समाज में बहू यानी स्त्री के प्रति व्यवहार को वास्तविक रूप में चित्रित किया है ।

'केशर माँ' इस उपन्यास के माध्यम से 'अनमेल विवाह' की समस्या को चित्रित किया है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र केशर का विवाह ऐसे व्यक्ति से होता है जिसकी उम्र अधेड़ है और सबसे बड़ा सच था यह था कि शादी के कुछ दिनों बाद उसके पति की मृत्यु होने वाली थी । यह सब कुछ जानते हुए भी केशर को विवाह करना होगा इस चिंता से माता–पिता ने गलत इंसान से उसकी शादी करवा दी । इसका पूरा परिणाम उसे जिंदगी भर भुगतना पड़ा । जो दिन उसके रंगीन थे, शादी के कुछ महीनों के बाद पूरी तरह बेरंग बन गए । सिवाय सफेद रंग और काले रंग के इसके जीवन में कुछ रहा नहीं और इसके लिए उसने एकमात्र पर्याय चुना वह था ईश्वर पूजा । वह मन से कुछ करना नहीं चाहती थी लेकिन उसके पास करने के लिए भी ऐसा कुछ नहीं था । सिर्फ जीने का केवल एक मात्र सहारा था पूजा । यहाँ केशर माँ की जिंदगी बरबाद हो जाने का एकमात्र कारण था अनमेल विवाह ।

'अपने साथ' इस उपन्यास के माध्यम से ज्योत्स्ना जी ने समाज में चित्रित अंधविश्वास को चित्रित किया है । जब इस उपन्यास की प्रमुख पात्र केका को रेणु का पत्र आता है, तब वह पत्र में लिखती है कि मुझे अभी बच्चा नहीं चाहिए । अभी मैं थिसिस लिखने में व्यस्त हूँ । आजकल बच्चा होना या दो बच्चे होना उस परिवार पर निर्भर होता है । केका तो चाहती है कि उसका दूसरा बच्चा हो, लेकिन उसके मन में ख्याल आता है कि जिनके बच्चे नहीं होते, या जब बच्चे नहीं होते तो बच्चों को पाने के लिए पाँच उँगलियों से महादेव जी की पूजा करते हैं । मंदिर में होने वाले पेड़ पर मन्नत माँगते हैं और उसे बहुत सारे धागे तथा चिथड़े बाँधते

हैं । कभी–कभी ब्राह्मणों को भोजन तथा दान भी कराते हैं । उनको लगता है कि ऐसा ही करना चाहिए । ऐसे इस तरह के काम करने से उनकी पत्नी को बच्चे हो जाएँगे । इन सब उदाहरण के माध्यम से ज्योत्स्ना ने समाज में चित्रित अंधविश्वास को उजागर किया है, जो आज भी कई शिक्षित–अशिक्षित लोगों में पाया जाता है और जिसका शिकार केवल औरत बनती है ।

'अपने साथ' उपन्यास के माध्यम से ज्योत्स्ना जी ने विधवा समस्या को चित्रित किया है । केका आज जिस मोहल्ले में रहती है, गंगा चाची भी वहीं रहती थी । उसकी उम्र पचास के आसपास थी । पिछले साल ही बेटे की शादी हो गई और नई नवेली दुल्हन घर आ गई । लेकिन पिछले दो सालों से उसके बर्ताव में काफी बदलाव आया है । जब देखो तब गंगा चाची आईने के सामने दिखती है । आईने के सामने खड़ी होकर सजती–सँवरती है । मोहल्ले के बूढ़े जब उसके पीछे घूमते हैं, तो अखरने लगती है। लेकिन इतना सब कुछ होने के बावजूद भी वह बेचारी बन जाती है । ऐसा लगता है कि इसके लिपा–पोती के पीछे कितना सारा दर्द है । कितनी सारी छटपटाहट छिपी हुई है । जो जिंदगी उसने जी नहीं थी वही जिंदगी जीने का मन करने लगता है । एक विधवा की जिंदगी कितनी उलझन भरी होती है उसका चित्रण किया गया है ।

'अ अस्तु का' इस उपन्यास के माध्यम से भावनात्मक समस्या को चित्रित किया है । इस उपन्यास की प्रमुख पात्र अस्तु जिसे हमेशा होने और ना होने की समस्या भावनात्मक रूप से सताती है । कभी उसे इस बात का डर लगता है कि अगर कहीं पेड दिखना बंद हो जाए तो, अगर एक दिन कभी आसमान ही ना दिखाई तो, और कभी–कभी उसे लगता है जैसे मानो वह पूरी तरह से साँस नहीं ले पा रही है । उसे लगता है उसे पूरी साँस आती ही नहीं। और इसी दुविधा में उसका मन हमेशा अटका रहता है । और कभी–कभी पड़ोस के बच्चे के अचानक मर जाने का सदमा भी उसे साँस लेने में तकलीफ करता है । यह सब बातें अस्तु की भावनात्मक छटपटाहट को दिखाती है । यहाँ पर आम नारी के माध्यम से हर सामान्य नारी में चलने वाली भावनिक दुविधा को चित्रित किया है ।

निष्कर्षः

ज्योत्स्ना मिलन का साहित्य नारी केंद्रित है । नारी जीवन से जुड़ी सामान्य से सामान्य समस्या को उन्होंने अपने लेखन का विषय बनाया है । नारी संदर्भ में विवाह की समस्या, सामाजिक समस्या, अनमेल विवाह, अंधविश्वास, भावनात्मक समस्या आदि समस्याओं को चित्रित किया है । इन समस्याओं का नारी जीवन पर पडने वाला प्रभाव दिखाया है । य़ही समस्याएँ आज भी सामान्य नारी के जीवन में पाई जाती है । जिसका य़थार्थ चित्रण लेखिका ने किय़ा है ।

संदर्भ ग्रंथः

ज्य़ोत्स्ना मिलनः अपने साथ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1976 पृ.सं.23
वही,पृ.सं.28
वही,पृ.सं.42
वही,पृ.सं.76
ज्य़ोत्स्ना मिलनः केशर माँ, हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, नई दिल्ली, 2011, पृ.सं.158
वही,पृ.सं.163
ज्य़ोत्स्ना मिलनः अ अस्तु का, हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया, नई दिल्ली, 2009, पृ.सं,9
ज्य़ोत्स्ना मिलनः संस्मरण, स्मृति होते–होते, सूर्य़ प्रकाशन मंदिर बिकानेर, सं 2010
ज्य़ोत्स्ना मिलनः कहते कहते बात को, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013

छात्र विमर्श : चेतना और चिंतन

डॉ. राजश्री लक्ष्मण तावरे
शंकरराव पाटील महाविद्यालय, भूम
मोबाइल नंबर – 9225599106
ई–मेल – tawarerajshree@gmail.com

शोध सारांश –

आज के संदर्भ में, छात्र विमर्श महत्वपूर्ण विमर्श है क्योंकि यह छात्रों को महत्वपूर्ण सोच और समस्या–समाधान कौशल विकसित करने में मदद करता है । आज की दुनिया में, छात्रों को अक्सर जटिल मुद्दों के बारे में सोचने और उनके बारे में निर्णय लेने की आवश्यकता होती है । छात्र विमर्श छात्रों को विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करने और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में मदद कर सकता है । यह उन्हें समस्याओं को नए तरीकों से हल करने और रचनात्मक समाधान विकसित करने में भी मदद कर सकता है ।

छात्र विमर्श भी छात्रों के सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण है । यह छात्रों को दूसरों के साथ बातचीत करने और सहयोग करने के कौशल विकसित करने में मदद कर सकता है । यह उन्हें सहानुभूति और समझ विकसित करने में भी मदद कर सकता है । आज के संदर्भ में, छात्र विमर्श को सफल बनाने के लिए, शिक्षकों को कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए । सबसे पहले, उन्हें छात्रों को विमर्श के नियमों और प्रक्रियाओं को समझने में मदद करनी चाहिए । दूसरा, उन्हें छात्रों को विमर्श में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए । तीसरा, उन्हें विमर्श को एक सकारात्मक और सहायक वातावरण में आयोजित करना चाहिए ।

छात्र भविष्य के मुखर स्वर है । जिनके स्वरों को सही दिशा और ऊर्जा मिलना आवश्यक है । वैश्विक समाज में बालकों और छात्रों के लिए चिंता का स्वर दिखाई देता है । पारिवारिक भूमिका को लेकर छात्रों में एक अजब तरह की उपेक्षा नज़र आ रही है । यह उपेक्षित नज़र आज की प्रातियोगिक समाज का परिणाम है । जिसमें यह छात्र अपना स्थान बनाने के लिए प्रयास कर रहे हैं । इन प्रयासों में छात्र अपनी जिज्ञासा के साथ ही जीवन जी रहे हैं । आत्महत्याओं में छात्रों की बढ़ती संख्या चिंता का कारण है, जिसको काफ़ी संवेदनशीलता के साथ सोचना आवश्यक है । छात्रों का राजनीतिक रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है । राजनीतिक मोहरे के रूप में छात्रों को तैयार किया जाता है, जिनके माध्यम से राजनीतिक दाँव–पेंच आसानी से खेले जाते हैं। रामवृक्ष कुमार अपनी कविता में लिखते हैं कि,

"खेल–खेल में शिक्षा हो पर
शिक्षा को खेल समझ बैठे,
अब राजनीति के मंचों पर
तित्तिल सा खूब उलझ बैठे ।"[1]

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा छात्रों के विकास के लिए आवश्यक है । परंतु छात्रों के हित के लिए राजनीतिक तंत्र के बीच में दम घुटते नजर आते हैं । 'चुनावी वादे एवं शिक्षा व्यवस्था' में तय्यब अहमद कहते हैं कि "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा जनसामान्य तक

सर्वसुलभ बनाना किसी भी देश की सत्ता का प्राथमिक दायित्व है तथा यहाँ सभी राजनीतिक दलों का संकल्प होना चाहिए । किन्तु विडम्बना यह है कि इस मुद्दे पर सत्ता पक्ष एवं विपक्षी दलों के पास ऐसे संकल्पों का अभाव है ।"[2] शिक्षा व्यवस्था में राजनीतिक दलों का सहभाग दिखाई देता है । परंतु राजनीतिक दल छात्रों के हित के पक्ष में बहुत कम नजर आते हैं । परंतु उनका इस्तेमाल राजनीतिक मुद्दों के लिए जरूर किया जाता है । शिक्षा को जनसामान्य तक पहुचाना आवश्यक है, जिसके कारण जनसामान्य में सामाजिक चेतना का विकास हो सके ।

शिक्षा व्यवस्था में खर्च किया जाता है, उसके आधार पर किसी भी देश का विकास निर्भर होता है । "शिक्षा का बजट कम होता चला गया ऐसा इसलिए भी हुआ कि ऊंचे पदों पर विराजमान लोग जिनका काम पॉलिसी बनाना है, वे देश की शिक्षा पर खर्च किये जाने वाले पैसों को केवल बर्बादी समझते हैं । वे यह भी झुठला देते हैं कि यह पैसा जनता की मेहनत की कमाई है और टैक्स की सूरत में वसूल किया जाता है । यदि यह पैसा शिक्षा पर खर्च किया जाता तो इससे बेहतर और क्या होता । लेकिन इनका उद्देश्य यह है कि जो भी शिक्षा सरकारी बजट पर दी जाती है उसको प्राइवेट कंपनियों को दे दिया जाए। मतलब यह है कि शिक्षा भी दूसरी चीजों की तरह बाजार में बेच दी जाए ।"[3] अतः शिक्षा में बाज़ार आया है । शिक्षा में बाज़ार का आगमन भारत ही नहीं बल्कि विश्व में चिंता का विषय है । जिस पर काफ़ी संवेदनशीलता के साथ सोचना आवश्यक है ।

शिक्षा में आर्थिक व्यवहार की बढ़ोत्तरी भी छात्रों के लिए चिंता का विषय है, जो जनसामान्यों के पक्ष में नहीं है । इसलिए छात्रों के हित में सोचना तथा उनके भविष्य को निर्धारित करने के लिए उचित निर्णयों को लेना आवश्यक है, "एक तरफ फीस में बढ़ोत्तरी को फंड पैदा करने के नाम पर सही करार दिया गया है, वहीं जनता के पैसों को पानी की तरह बहाया जा रहा है । ..... टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज में भी फीस बढ़ाने और वंचित वर्ग को दी जाने वाली स्कॉलरशिप को खत्म किये जाने के विरुद्ध लंबे समय तक लड़ाई चली लेकिन प्रशासन बज़िद रहा । फीस न केवल सोशल साइंस बल्कि साइंस से संबधित दूसरी रिसर्च की भी बढ़ा दी गयी ।"[4] सामाजिक और आर्थिक स्थिति से दुर्बल लोगों के शैक्षिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए स्कॉलरशिप दी जाती है, परंतु उनका यह भी अधिकार छीना जा रहा है । इन स्कॉलरशिपों को खत्म किया जा रहा है, जिसके कारण होनहार और मेहनती बच्चों को शिक्षा से वंचित रखा जा रहा है । "शिक्षण संस्थानों एवं अन्य शिक्षा संबधी उपलब्धता के बावजूद वर्तमान समय में छात्रों के लिए गरीबी उनकी शिक्षा में सबसे बड़ी रुकावट है । गरीबी शिक्षा के मार्ग में बाधा न उत्पन्न करे इसके लिए सरकारें छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की सुविधा पहुंचाती है । हिंदुस्तान में भी छात्रों के लिए विभिन्न छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध हैं लेकिन या तो छात्रों को जानकारी नहीं होती या फिर सरकारी कार्यों में अनुशासनहीनता एवं लंबी जटिल प्रक्रिया के कारण छात्र इन योजनाओं से लाभ नहीं उठा पाते ।"[5] छात्रवृत्ति छात्रों के शैक्षिक विकास के लिए उपयोगी जरुर हैं, परंतु उनको सही रूप में निर्देशित करना काफी आवश्यक है ।

छात्रों को विभिन्न छात्रवृत्तियाँ दी जाती है, परंतु आज के इस महँगाई के दौर में शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए असमर्थ हो जाते हैं, "यदि किसी छात्र को कोई स्कालरशिप मिलती भी है तो बढ़ती हुई महँगाई के कारण वह छात्र शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हो जाता है । यह स्कालरशिप इस लिए भी पर्याप्त नहीं हैं कि छात्रों की संख्या में बढ़ोतरी हुई हैं लेकिन छात्रवृत्ति के लिए उपलब्ध बजट में सरकार की तरफ से बढ़ोतरी नहीं की गयी । यह परिस्थिति इस बात की मांग करती है कि सरकारें अनावश्यक खर्चों में कटौती करते हुए देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए शिक्षा पर अधिक से अधिक पैसे खर्च करें ।"[6] अतः देश के भविष्य के लिए छात्रों के शैक्षिक सहभागिता को बढ़ाने के छात्रवृत्ति योजनाओं को बढ़ावा देना आवश्यक है ।

युवाओं की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ रोजगार के इर्द–गिर्द घूमती नजर आती है । रामवृक्ष कुमार कहते हैं –

"न नौकरी न रोजगार कहीं
पढ़ रहे लगाये आस यही
आज नहीं तो कल ही सही
निकलेगी कोई राह कहीं।"[7]

शिक्षा और रोजगार दोनों एक–दूसरे के लिए आवश्यक तत्व है । शिक्षा के सिवाय रोजगार नहीं, रोजगार (पैसै) के सिवाय शिक्षा नहीं इसलिए छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना आवश्यक है । "भारत दुनिया में सबसे अधिक युवा जनसंख्या वाला देश है । यहां हर साल लाखों एवं करोड़ों की संख्या में छात्र एवं युवा रोज़गार के मैदान में कदम रखते हैं ।"[8] अतः आज बेरोजगारी के कारण विभिन्न समस्याओं का सामना छात्रों को करना पड़ता है । जिसके कारण शिक्षा के प्रति छात्रों में उदासीनता नजर आती है ।

निष्कर्ष

अतः आज भारत का प्रत्येक छात्र विभिन्न समस्याओं से गुजर रहा है । परिवार और देश के विभिन्न इकाइयों में सबसे उपेक्षित छात्र होते हैं, उनकी क्षमताओं पर सवाल खड़े किए जाते हैं । आज छात्र विभिन्न तनावों के बीच में प्रतियोगिक समाज में अपनी सांस को ठीक तरह से ले नहीं पा रहे हैं । छात्र विमर्श से साबित होता है कि 'चेतना' और 'चिंतन' छात्रों के शिक्षात्मक और व्यक्तिगत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । 'चेतना' के माध्यम से छात्र अपने आत्मा के साथ संबंध स्थापित करते हैं, जबकि 'चिंतन' से उनकी सोचने की क्षमता में सुधार होता है । इस अंतर्निहित संबंध के माध्यम से, छात्रों को समस्त शैक्षिक अनुभव में उच्च स्तर की सामग्री और समझने की क्षमता प्राप्त होती है । इस विमर्श ने शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए सुझाव और छात्रों के लिए सार्थक सुझाव प्रदान किया है, जिससे आने वाले शिक्षा क्षेत्र में और भी सुस्त बदलाव की आवश्यकता हो ।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

१.https://www.google.com/amp/s/www.amarujala.com/amp/kavya/mere-alfaz/rambriksh-kumar-vidyarthiyon-ki-vyatha-1639714668556
२. तय्यब अहमद – छात्र विमर्श, छात्र चेतना और संकल्प का प्रतीक, संपादकीय, अप्रैल, 2019
३. (वहीं संपादकीय)
४. (वहीं संपादकीय)
५. (वहीं संपादकीय)
६. (वहीं संपादकीय
७.https://www.google.com/amp/s/www.amarujala.com/amp/kavya/mere-alfaz/rambriksh-kumar-vidyarthiyon-ki-vyatha-1639714668556
८. वहीं संपादकीय

हिंदी उपन्यास में कृषक जीवन (फाँस के संदर्भ में)

डॉ. विजय गणेशराव वाघ
हिंदी विभाग,सहयोगी प्राध्यापक,
तोष्णीवाल कला, वाणिज्य और
विज्ञान महाविद्यालय, सेनगाँव
ता. सेनगाँव. जि. हिंगोली. (महाराष्ट्र)
मोबाईल – 9404534455
Email ID – dr.vijay.g.wagh@gmail.com

शोध सारांश

भारत में कृषि की सर्वोच्चता के संबंध में सुप्रसिद्ध प्राचीन लोकोक्ति स्वयं यह सिद्ध करती है कि भारत में कभी कृषि को सर्वोत्तम व्यवसाय माना जाता था । इस मत की पृष्टि हेतु भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह का मत देखना समीचीन होगा, वे लिखते है– "कृषि हमारे देश में केवल जीवनोपार्जन का साधन मात्र अथवा उद्योग–धंधा ही नहीं है अपितु अर्थव्यवस्था की रीढ़ है । राष्ट्र की संसृद्धि, योजनाओं की सफलता, विदेशी मुद्रा का अर्जन, राजनैतिक स्थिरता आदि सभी कृषि विकास पर आधारित है ।"[1] किंतु आजादी के 73 वर्षों के बाद देश की कृषि संबंधी वास्तविकता कुछ और दिखाई देती है । कृषि बाजारों में गाँव के व्यापारियों–साहुकारों तथा आढ़तियों, कमीशन एजेंटों आदि जैसे अन्य बिचौलियों का निरंतर शोषणात्मक रवैया आज किसानों की आर्थिक स्थिति को बद से बदत्तर कर रहा है । वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक आपदाएं सूखा, बारिश, बाढ़ और चक्रवात जैसी परिस्थितियाँ भी उन्हें घेरे रहती है । सन् 1990 के दशक में प्रारंभ किए गए आर्थिक सुधारों ने आर्थिक राष्ट्रीय नीति में कृषि अर्थव्यवस्था को हाशिए पर खड़ा कर दिया गया । परिणामस्वरूप देश की कृषि व्यवस्था सकारात्मक अर्थव्यवस्था से नकारात्मक अर्थव्यवस्था में रूपांतरित हो गई । जिसके चलते कृषक समाज अनेक समस्याओं से ग्रस्त हो गया । नियोजित आर्थिक विकास का लंबा सफर तय करने के बादजूद भी कृषि और किसानों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है । किसानों की दिन प्रतिदिन गिरती आर्थिक स्थिति देश और समाज के लिए गंभीर चिंता का विषय है ।

भारत में ग्रामीण जीवन से संबंधित समस्याओं में कृषक तनाव एक ऐसी समस्या है जो कम या अधिक मात्रा में देश के लगभग सभी क्षेत्रों में व्याप्त है । वर्तमान में कृषक तनाव का मुख्य परिणाम कृषकों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं के रूप में सामने आयी है । श्रीयुत जी. पी. मिश्रा अपने अध्ययन के आधार पर किसान तनाव को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "कृषि संबंधी संरचना में होने वाली परिवर्तन की प्रक्रिया से जब कमजोर वर्ग के किसानों की आर्थिक दशा में सुधार नहीं हो पाता तो इससे उत्पन्न होने वाले असंतोष को ही कृषक तनाव कहा जाता है ।"[2] कृषक की ऋणग्रस्तता से उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव एवं आर्थिक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए हरिश्चंद्र पाण्डेय का यह मत विचारणीय है। वे अपनी कविता में लिखते हैं–

"क्या नर्क से भी बदतर हो गई थी उसकी खेती,
वे क्यों करते आत्महत्या
जीवन उनके लिए उसी तरह काम्य था

जिस तरह मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष
लोकाचार उसमें नदियों की तरह प्रवाहमान सदा नीरा
उन्ही की हलों के फाल से
संस्कृति की लकीरें खिंची चली आई थी
उनका आत्म तो कपास की तरह उज्ज्वर था
वे क्यों करते आत्महत्या ।"

किसानों की यह स्थिति किसी भी सभ्य समाज के लिए बेहद शर्मनाक करने वाली घटना है । आखिर वे कौन सी परिस्थितियाँ है, जो देश के अन्नदाता को ही अपनी जीवन लीला समाप्त करने को मजबूर कर रही है । राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी रिकॉर्ड के अनुसार देश में किसानों की आत्महत्या के मामले किसी भी अन्य व्यवसाय से अधिक है ।

विगत दो दशकों से देश के विभिन्न राज्यों में बढ़ रही किसानों की आत्महत्याओं को केंद्र में रखाकर संजीव ने खोजी लेखन के तहत 'फाँस' उपन्यास की रचना की । देश के किसान की वर्तमान स्थिति को दर्शाते हुए उपन्यास की भूमिका में प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं– "सब का पेट भरने और तन ढकने वाला किसान खुद भूखा नंगा और लाचार क्यों है? बहुत ही ज्वलंत और बेनियादी मुद्दा चुना है संजीव जैसे कथाकार ने और संभवत: प्रेमचंद के गोदान के बाद पहली बार भारतीय किसान और गाँव की पूरी जिंदगी का दर्द और कसमसाहट सामने आई है । स्थानीय होकर भी वैश्विक, तात्कालिक होकर भी कालातीत"[3] 'फाँस' यह उपन्यास महाराष्ट्र के विदर्भ अंचल में स्थित यवतमाल जिले के बनगाँव में तिल–तिल मरते हुए, किसान परिवार के शिबु और शकुन तथा उनकी दो बेटियों के माध्यम से लेखक ने देश के कृषक जीवन की दुखद गाथा की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत किया है। उपन्यास के संदर्भ में अपने विचार रखते हुए डॉ. वंदना तिवारी लिखती हैं– "उपन्यास दो भागों में बँटा दिखाई देता है । पहला किसानों के दुख–दर्द, उनके संघर्ष, असफलताओं और उनकी आत्महत्याओं की केस स्टडी की तरह सामने आता है, जो समस्याओं के कारणों की शिनाख्त करता है । जिससे यह विदर्भ से शुरू होकर पूरे देश के किसानों की समस्याओं को समेटता हुआ । उन सबकी करूण गाथा बनकर उभरता है । तो वहीं दूसरा हिस्सा वो है जो समस्याओं के समाधान की खोज में आगे बढ़ता है । इसमें वे पात्र प्रमुखता पाते है जो मृतकों के जाने के बाद समय और समस्याओं से जुझने के लिए बचे रह गए है जो जान देने से कुछ बदलने वाला नहीं । बदलना है तो जीना होगा, लडना होगा ।"[4] सूचना प्रोद्योगिकी के युग में भी देश के विभिन्न भागों में सिंचाई व्यवस्था की उन्नत तकनीकों का सरकारी नीतियों के चलते यथा योग्य प्रसार नहीं हो पाया है, आज भी किसान पारंपरिक खेती करने को मजबूर है । किसान जिन फसलों को बोना चाहते है उनके अनुकुल मानसून जलवायु, पानी, भूमि के साथ ही अच्छी प्रजाति के बीजों की व्यवस्था न होने से किसान अच्छा उत्पादन नहीं ले पाता । लेकिन वर्तमान की उपभोक्तावादी संस्कृति के पोषक वर्ग के विकृत मानसिकता वाले लोगों को लगता है कि किसान अपने भाग्य को बदलना नहीं चाहता, वह मेहनत नहीं करना । ऐसे लोगों को उपन्यासकार करारा जवाब देते हुए, शकुन के माध्यम से कहते हैं– "पत्तलों में नहीं खा रहे? या कि जमीन पर नहीं सो रहे? लेकिन कोई भी तपस्या आज तक फलवती हुई क्या? कहने को दो एकड़ की खेती? मिला क्या? कापूस तक एकदम से दगा दे गया, मक्का सिर्फ नाम का जो थोडी बहुत उम्मीद है, वह धान से । वह भी कितनी । दो साल से ही सूखा है । यह तो कहो, पास ही जंगल है जिससे सहेरा, शाल के बीज, मावा, बाँस, लकडी आदि से कुछ न कुछ मिल जाता है, वरना तो ब्राह्मणों की रहनुमाई करते बीतती । वर्षों पहले कापूस का नया बीज आया तो एक आस जगी थी । वह भी साला नपुसंक निकला अब चारों तरफ निराश किसानों का एकमात्र अवलम्ब बचा जगंल। उस पर भी वन विभाग का नया फरमान छूना मत?"[5]

निरंतर बढ़ती आबादी, औद्योगीकीकरण एवं नागरीकरण के विस्तार से कृषि योग्य भूमि में कमी आई है । सन् 1947 से लेकर वर्तमान सरकार तक सभी ने किसान हित में अनेक योजनाओं की घोषणा की । परंतु इन योजनाओं को क्रियान्वित करने से पहले किसानों की जमीनी समस्याओं को ध्यान में रखा जाता तो शायद आज देश के किसानों की स्थिति कुछ और होती । तभी तो उपन्यासकार कुर्सियों पर बैठे भ्रष्टनेता, अधिकारियों की दिशाहीन सरकारी नीतियों की आलोचना करते हुए कहते हैं– "दिली में ही बैठकर क्यों बना ली सरकारों ने हमारे गाँवों के कायाकल्प की योजना? क्यों जगाए सपने, बी. टी.बीज की तरह बांझ सपने? मर गए लोग? हम से पूछते, हम बताते, बडे नहीं, छोटे–छोटे सपने चाहिए हमारे गाँव को ।"[6] भारत के अधिकांश कृषक आज भी अशिक्षित है, वे अपनी अज्ञानता के कारण वैज्ञानिक अनुसंधानों से बेखबर तथा प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहने की वजह से भारतीय कृषक जीवन में बाह्यआडंबर, रूढि व प्राचीन परंपरा आज भी दिखाई देती हैं । गाँवों में विभिन्न प्रकार के देवी–देवताओं की पूँजा करना, भाग्यवाद, जादू–टोना जैसे अंधविश्वास ग्रामीण जीवन में आस्था का केंद्र बना हुआ है । इन परंपराओ के प्रति कृषक की गहन आस्था है । यही वजह है कि धर्म के नाम पर पूंजीपतियों एवं साहुकारों ने किसानों का निष्ठुर शोषण किया है । जिसकी अभिव्यक्ति फाँस उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । उपन्यास की पात्र शकुन के माध्यम से लेखक कहते हैं– "उसने किस देवी–देवता की पूजा नहीं की, मन्नत नहीं मांगी लेकिन कुछ बदला? कुछ नहीं । उसे दिन पर दिन इन देवी–देवताओं पर संशय होता जा रहा है ।"[7] यही कारण है भारतीय कृषक–समाज नवीनता और प्राचीनता के द्वंद में फसा हुआ है । गाँव में कही धार्मिक आस्थाओं का विघटन हुआ है तो कही नवीन प्रवृत्तियों ने जन्म भी लिया है । तभी तो चौधरी छोटूराम किसानों को सावधान करते हुए कहता हैं– "ऐ किसान! चौकस हो के रह । चौंकन्ना बन । होशियारी से काम ले । यह दुनिया ठगों की बस्ती है और तु बडी असानी से काम ले । यह दुनिया ठगों की बस्ती है और तू बडी आसानी से ठगों के जाल में फस जाता है। जिनको तू पालता है वे भी तेरे विरूद्ध है और तुझे खबर तक नहीं । कोई पीर बनकर लूटता है कोई पुरोहित बनकर लुटता है ।"[8] ऐसी स्थिति में देश का किसान किस तरह अपना और अपने परिवार का जीवन निर्वाह करे । किसानों की यह दुर्दशा कोई नई बात नहीं है । फिर भी भारतीय किसान आज भी अत्यंत धैर्यवान बना है । हर बार धोखा खाने के बाद भी वह जीवन में आशा की किरण को जगाए हुए निस्वार्थ भावना से निरंतर अपने कर्म में लग जाता है । उपन्यासकार ने विदर्भ के किसानों के माध्यम से देश के किसानों की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा हैं– "यह तीसरी बुआई है। चुभ रही है बदरकद्दू , चुनचुना रही है पूरी देह । हाथ में लेकर बीजों को धमका रही है छोटी–दो दो बार धोखा हो चुका है । इस बार बहना नहीं, बिलाना नहीं. सड़ना नहीं, सूखना नहीं, दगा मत देना । बरोबर जमसिल समझाता? बहुत मारूंगी हा, इस मीठी धमकी के बाद उसने बीजों को फिर से चूमा और रोप दिया काली माटी में ।"[9] इस प्रकार हम देखते हैं कि खेती में लागत ज्यादा और मुनाफा कम होने के कारण किसान को कर्ज का सहारा लेना पड़ता है । किसानों की इस दयनीय स्थिति का मुख्य कारण, उन्हें मानसून की जानकारी का अभाव होना है ।

देश में प्रतिदिन बढ़ती महँगाई से महँगे होते कृषि साहित्य की खरीदी हेतु किसानों को ऋण की आवश्यकता पड़ती है । तब वह राष्ट्रीय बैंकों की ओर मुडते हुए दिखाई देते हैं लेकिन बैकों की कागदी कार्यप्रणाली से परिचित न होने के कारण व भ्रष्टतंत्र प्रणाली के चलते उन्हें गाँव के साहुकारों से अधिक ब्याज की दर पर कर्ज लेना आसान लगता है । देश के किसानों की इस यथार्थ स्थिति को उपन्यासकार ने बडे ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा हैं– "महंगे बीजों, खादों और कीटक नाशकों की वजह से ज्यादातर किसानों को कर्ज लेना पड़ता है । सरकारी बैंकों में खसरा–खतौनी नकल दुरूस्ति समेत कई लफड़े कर्ज की राशि भी कम । फलत: ज्यादातार किसान वहां जाने से ही घबराते है और उन्हें ऋण एजंसियों और गाँव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है । जो होता तो 10 प्रतिशत प्रतिमाह या उससे भी ज्यादा पर वे यह नहीं पूछते थे कि किसलिए ले रहे हो, उनसे रिश्ता अंत तक आत्मीय बना रहता है । एक किसान को सिर्फ खेती, बीज, कीटक नाशक, सिंचाई नहीं जीवन और परिवार की

अन्य जरूरते भी होती हैं, जैसे बच्चे शिक्षा, स्वास्थ्य, बेटी की शादी, खुशी, गमी जैसे चीजों के कर्ज सरकार से नहीं मिलते । ऐसे हालात तक ले ही आए है क्योकि हुक्मरान हमें यहाँ? सारे राजनेता, सारे पार्टियों के राजनेता लगता है दलाल है उन्हीं के ।"[10] देश के किसानों की यह दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है । देश की अधिकाधिक अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है और लगभग 70 प्रतिशत आबादी आज भी कृषि पर आश्रित है । बावजूद इसके भूमंडलीकरण, उदारीकरण और नीजिकरण नीति के तहत देश की कृषि और किसान को हाशिए पर डाला गया । किसानों की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन निम्न से निम्नतर होती जा रही है । इसकी अभिव्यक्ति उपन्यास में यों होती हैं– "इस देश के सौ में से चालीस शेतकरी आज खेती छोड़ दे अगर उनके पास कोई दूसरा चारा हो । 80 लाख ने तो किसानी छोड़ भी दी ।"[11] कभी भारत की आत्मा के नाम से ख्याति प्राप्त किसान आज अपनी कष्ट भरी जिंदगी से टूटकर आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है । यह आत्महत्या एक किसान की आत्महत्या नहीं है बल्कि यह किसानी संस्कृति की हत्या अर्थात भारत की हत्या है, ऐसा कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगी । जब भौतिकता के चकाचौंद में देश का आम आदमी अपनी इंसानियत भूलकर केवल और केवल स्वार्थ सिद्धी हेतु अन्य लोगों के साथ अमानवीय कृत्य करने को लालायित है । ऐसे आधुनिक स्वार्थी मानव के अमानवीय कृत्य को देखकर लेखक किसान की दयनीय स्थिति पर प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं– "खेत क्यों बंजर हो जाता है और क्यों बंजर हो जाता है आदमी का मन? इस मरण के खिलाप उठकर खड़े होने की कोशिश में बार–बार लडखड़ा कर क्यों गिरता आदमी?"[12]

शहरी विकास के नाम पर ग्रामीण विकास कहीं थम सा गया है । आधुनिकीरण के आर्थिक नीतियों में हाशिए पर खड़े छोटे किसान निरंतर अपने अस्तित्व को खोते जा रहे हैं । कर्ज के बोझ तले दबा किसान दम तोड़ रहा है । यह सब छोडकर वह भी शहरों की रोशनी देखकर उसकी ओर आकर्षित होता है लेकिन परिवार की जिम्मेदारियाँ उसे मुक्त नहीं होने देती । उपन्यास का पात्र शिबु खेती की दशा देखकर मायूस है । सोचता है कि अकेला होता तो चला भी जाता कहीं... नागपुर, नासिक, मुंबई, दिल्ली । लेकिन ये दो–दो मुलगियाँ, बायको इन सब को लेकर कहाँ जाऊँ?"[13] भारतीय किसान अपने परिवार की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए जमींदारों, सूदखोरों के शोषण की चक्की में पिसता हुआ कब अपने जीवन की बलि दे देता है । इसका ज्वलंत उदाहरण लेखक संजीव ने 'फाँस' उपन्यास के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है । उपन्यास की भूमिका में श्री प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं– "कृषक आत्महत्या महज जिम्मेदारियों से पलायन नहीं, एक प्रतिवाद भी है– कायरता नहीं, भाव प्रवणता का एक उदात्त मुहूर्त भी– पश्चाताप प्रस्थान और निर्वेद की आग में मानवता का झुलसता हुआ परचम ।"[14] कर्ज के जाल से छुटकार पाना आसान नहीं है । ऐसे में किसान को एक ही विकल्प दिखायी देता है– आत्महत्या । इन सभी में फंसा शिबु बैंक का पूरा कर्ज चुकाने के बाद भी शोषण तंत्र से हार कुएँ में कुदकर अपनी जान देने को मजबूर हो जाता है ।

विकास की अंधी दौड़ में बिकाऊ मीडिया में किसान की आत्महत्या जैसी कोई खबर, खबर नहीं बनती । देश के अन्नदाता की यह दयनीय स्थिति को बयान न कर मीडिया टी. आर. पी. के चक्रव्युह में फस कर, आज अपने मूल उद्देश्य से भटकती नजर आ रही है । इस स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहते हैं– "किसान आत्महत्या कोई खबर नहीं बन पाती। मीडिया में हजार–हजार आत्महत्याएं कोई खबर नहीं बन पाती । खबर बनती मुबंई में चल रही फैशन वीक प्रतियोगिता । खबरिया चैनल जुटे है उसे कवर करने को मात्र 512।"[15] कृषिप्रधान देश में निजीकरण की नीति ने देश के छोटे–छोटे अन्नदाताओं को अंधेरे में धकेल दिया है, जहाँ केवल अंधेरा ही अंधेरा है । उपन्यास की भूमिका बांधते हुए, देश की गंभीर समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते श्री प्रेमपाल शर्मा लिखते हैं– "फाँस खतरे की घंटी भी है और आत्महत्या के विरूद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और जमीनी संजीवनी का संकल्प भी ।"[16] 'फाँस' उपन्यास के माध्यम से सजीव ने उन सभी पहलुओं को दिखाने की कोशिश की है जिन पहलुओं से केवल विदर्भ का किसान ही नहीं बल्कि देश के सभी किसानों को गुजरना पड़ रहा है ।

इन परिस्थितियों से तंग आकर जब किसान आत्महत्या कर लेता तो यह आत्महत्या जब तक किसान की आत्महत्या सिद्ध नहीं होती जब तक आप भ्रष्टतंत्र के पोषक नेता, सरकारी कर्मचारी, बिचौलियों एवं दलालों आदि को कुछ आर्थिक लाभ नहीं होता । शिबु के मामले में यही बात होती उपन्यास में दिखाई देती है– "पोस्टमार्टम, पंचनामा... घूस की डिमांड... पैसे दे दो इन्हे पात्र बना दे वरना ।"[17] एक अन्य उदाहरण द्वारा लेखक इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– "बाप के नाम पर जमीन, मरा बेटा! आत्महत्या अपात्र! कारण जमीन तो उसके नाम थी ही नहीं ।"[18] अर्थात् किसान की जीवनलीला समाप्त होने पर भी उसके परिवार के शोषण का चक्र थमने का नाम नहीं लेता । तो कुछ राजनीतिक दल अपनी राजनीतिक रोटियों को सेकनें के लिए किसान की आत्महत्या को सत्ता की कुर्सी तक पहुँचने का हथकंडा बनाकर अपने स्वार्थ को प्राप्त करना चाहते हैं । उपन्यासकार संजीव ने यहाँ यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार देश के अन्नदाता की आत्महत्या को देश के स्वार्थी नेता अपने वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते हैं । इसकी अभिव्यक्ति उपन्यास में यों होती हैं– "किसानों के नाम अरबों रूपए लूटने है तो कृषक आत्महत्या, अपनी चीनी मिल लगाने का बहाना ढूंढना है तो कृषक आत्महत्या, विरोधी पार्टी दागना है तो कृषक आत्महत्या, बहुत कारगर है कृषक आत्महत्या की तोप ।"[19]

निष्कर्षत: हम कह सकते कि देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'कहाँ तो तय था चिराग हरेक घर के लिए'। लेकिन वोट की ओछी राजनीति ने कृषि की स्थिरता और उत्पादकता में वृद्धि के मुद्दे को लेकर कभी एक सुसंगत कृषि नीति न अपनाने से कृषि माल की दलाली करने वाले मालामाल और अन्नदाता बेहाल है । यही परिस्थिति रही तो इक्कीसवीं सदी की उपभोगतावादी संस्कृति में हर एक आदमी उपभोक्ता होगा, पर अन्नदाता या उपजाने वाला किसान शायद कोई न होगा । संजीव का फाँस किसानों की आत्महत्याओं के भयावह दृश्य को प्रस्तुत ही नहीं करता बल्कि शासन की शोषणात्मक व्यवस्था पर प्रश्नचिंह भी लगाता है । जिसको व्यक्त करते हुए लेखक लिखते हैं– "क्या शिष्टाचार है... मरना है तो मर जाओ, ये परमिशन की नौटंकी क्यों? सोचते हो, तुम्हारे दु:खों से दु:खी और द्रवित हो जाएगी सरकार । दान, दया की बरसात करेगी ।... तुम क्या समझते हो, तुम्हारे आत्महत्या करने से शासन बदल जायेगा? सिस्टम बदल जाएगा? कुछ नहीं बदलेगा?"[20]

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डी. एस बघेल, किरण बघेल – भारत में सामाजिक आंदोलन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल – पृ.क्र –175
2. डी.एस. बघेल – समाजशास्त्र, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल – पृ.क्र. 261
3. प्रेमपाल शर्मा, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2015 भूमिका
4. वंदना तिवारी– किसान जीवन की करूण गाथा–अपनी माटी त्रैमासिक ई–पत्रिका 24 मार्च, 2017
5. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 25 – 26
6. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 72
7. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 172
8. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 172
9. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 99
10. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ.क्र..– 110–111
11. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 17
12. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 73

13. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 183
14. प्रेमपाल शर्मा, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 भूमिका
15. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– पृ. 183
16. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 105
17. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 116
18. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 133
19. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 153
20. संजीव, फाँस उपन्यास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. क्र.– 183

समाजिक परिवर्तन के संकेत

डॉ. दिप्ती केशरी

मध्य विद्यालय देवधारी

Mobile No- 9160818580

E-Mail diptikeshri20@gmail.com

शोध सारांश

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला है । समाज के किसी भी क्षेत्र में होने वाले विचलन को हम सामाजिक परिवर्तन कह सकते हैं । उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का साहित्य आज भी हमारे समाज में परिवर्तन के लिए प्रेरणा का संचार करता है । उन्होंने राष्ट्र के निर्माण के लिए जो सपना देखा था उसे लक्ष्य तक पहुंचाना हमारी जिम्मेदारी है । जाति और धर्म आधारित भेदभाव को दूर कर ही हम अपने समाज की अनेक प्रकार के खाइयों को पाट सकते हैं । परिवर्तन वस्तु, विषय अथवा विचार में इस समय के अंतराल से उत्पन्न हुई भिन्नता को कहते हैं । परिवर्तन होना एक अवश्यंभावी क्रिया है क्योंकि यह प्रकृति का नियम है संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नही रहता उसमें कुछ ना कुछ परिवर्तन सदैव होते रहते हैं । स्थिर समाज की कल्पना करना आज के युग में संभव नहीं है समाज में शाति स्थापित करने के लिए परिवर्तन एक आवश्यक क्रिया है ।

वास्तव में परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है । समाज के किसी भी क्षेत्र में होने वाले बदलाव को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है । परिवर्तन से अभिप्राय समाज के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि किसी भी क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन से है। गिडिंग्स के मतानुसार, "समाज स्वयं एक संघ है, संगठन है, व्यवहारिक संबंधों का योग है, जिसमें भाग लेने वाले व्यक्ति एक, दूसरे से बँधे रहते हैं ।"[1]

आधुनिक हिंदी शब्दकोश में परिवर्तन शब्द का अर्थ दिया है, "सुधार या बदलाव ।"[2] स्वतंत्रता प्राप्ति के कारण गाँव–गाँव में आये हुए परिवर्तन धारा संबंधी डॉ. प्रेम कुमार का मानना है कि "भारत के महानगरों से लेकर कस्बों और गाँवों में एक संक्रमणकालीन स्थिति है और सभी स्थानों पर काम संबंधी पुराने मूल्य या तो टूट रहे हैं या परिवर्तित हो रहे हैं ।"[3]

स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेजी शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन किए तथा विभिन्न समाजों ने अपने–अपने तरीके से इन परिवर्तनों को स्वीकार किया । इस काल में हमारे समाज में शिक्षा के प्रचार प्रसार ने जनमानस को जागृत किया । जहाँ अस्तित्व के प्रति हर कोई सजग हो चुका था । वहीं समाज में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियाँ, नैतिक मान्यताएँ, और परंपरागत मूल्यों में भी परिवर्तन आने लगे थे । अंधविश्वासों के नाम पर लोगों कों गुमराह करने का क्रम अब कम हो चुका था ।

परिवर्तन समाज के नव निर्माण में सहायक होता है । जो कमियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करता है । साहित्य समाज के यथार्थवादी रूप को चित्रित कर समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंग को जीवंत अभिव्यक्ति के द्वारा समाज के नवनिर्माण का कार्य करते हैं ।

सुधाकर आशावादी ने अपनी कहानियों में समाज में आए हुए पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी प्रकार के परिवर्तनों को अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण से परख कर प्रस्तुत किया है । स्त्री और पुरुष जाति की मानसिकता में होने वाले परिवर्तन ने व्यावहारिक सिद्धांतों में भी पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है । समाज में हो रहे परिवर्तन ने परिवार को भी अपने साथ

अछूता नहीं रखा क्योंकि परिवार समाज का मुख्य केंद्र बिंदु है । परिवार से ही समाज का निर्माण होता है । अतः समाज में हो रहे परिवर्तन के कारण समाज के पुराने पर्दे, संस्कारों, मूल्यों, परंपराओं में भी तीव्र गति से परिवर्तन ने पति–पत्नी, सास–बहू, भाई–बहन के रिश्ते–नाते आदि सभी रक्त संबंधों में परिवर्तन किए ।

परिवार का मुख्य आधार स्तंभ स्त्री है । अतः स्त्री हेतु स्वयं को पहचान दिलाने एवं अपने अस्तित्व की रक्षा करना आवश्य हो जाता है । नारी अस्तित्व की तलाश में पारीवारिक जीवन में मूलभूत रूप से परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न की है जिससे नर–नारी के दांपत्य जीवन में भी अनेक परिवर्तन आए हैं इस संबंध में डॉ. कुसुम अंसल का कहना है– "शिक्षा और नई चेतना से स्त्री को एक नई दिशा प्राप्त हुई है जिसके परिणामस्वरूप दांपत्य जीवन संबंधी परंपरागत नैतिक मान्यताएँ शिथिल होती जा रही है। एक निष्ठता (पति ही परमेश्वर है) की मांग अब अनुचित प्रतीत होती है ।"[4]

"युग–युग'' से चली आने वाली द्वितीय श्रेणी की स्त्री ने अपने को उत्पीड़न प्रक्रिया से उभारकर अपनी आवाज को ही बुलंद नहीं किया है, अपना स्थान भी तलाशा है । उसने स्त्रीत्व का नया रूप गढ़ा है, पत्नीत्व का, प्रेमिका का यहाँ तक कि मातृत्व का भी नया रूप सामने रखा है । प्रणय, पति, परिवार और प्रेमी सबको अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है ।"[5] "कुछ अपने पल" के अंतर्गत प्रेरणा एक विधवा स्त्री है तथा वह रजत की मृत्यु के उपरांत उसके संपूर्ण सपने को साकार करने हेतु उसके कार्य संस्थान को सुचारू रूप से संचालित करती हुए कहती है– "यदि पुरानी परंपराओं का बिना किसी तर्क या विवेक के पालन करते रहेंगे तो समाज में नयापन कैसे आएगा, सदियों से समाज ने पुरानी परंपराओं को त्याग कर नयेपन का आविष्कार करने का बीड़ा उठाया है, तभी हम समृद्ध हो रहे हैं...।"[6]

सुमित जी ने अपना पक्ष प्रबलता से प्रेरणा के सम्मुख रखा तथा उसे संस्थान में कार्य करने हेतु प्रेरित करते हुए कहा– "खुली हवाओं में पाश्चात्य विकृति ने अपना वर्चस्व इसी प्रकार तो स्थापित किया सीधे हमारे घरों में घुसकर हमारे अंतस्थ में उतरने लगी है । हम अपनी पावन संस्कृति को भूल गए हैं । जहाँ राधा का निश्छल प्रेम और भक्ति का सागर स्वयं में जनमानस को डूबने पर विवश करता है । वहीं अपने घर की आत्मीय संस्कृति को त्यागकर पाश्चात्य जूठन को चाटने में हम स्वयं को कितना गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं । आज की युवा पीढ़ी, इस संस्कृति के कारण ही देहजनित अनेक बीमारियों से त्रस्त है तथापि विकृति ओढ़ने की जैसे सभी में होड़ सी लगी हो । अपनी संस्कृति के पतन में हम भी कम दोषी नहीं हैं । हम ऐसे उदाहरण ही समाज के सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर पाते, जो अनुकरणीय हो तथा आत्म संस्कृति के ध्वजवाहक हो ।"[7]

'पलायन' कहानी भी समाज में हो रहे पाश्चात्य शैली के अंधानुकरण को अपनाए जाने के कारण समाज किस दिशा में जा रहा है यह व्यक्त करता है । अनुराग बाबू कहते हैं– "तुम ठीक कहते हो... फर्ज तो है... मैं भी समझता हूँ, मगर वर्तमान पीढ़ी भावनात्मक संबंधों को ढोना नहीं चाहती... उनका लिविंग स्टाइल बदल चुका है, पुराने क़डियो की छत के मकान उन्हें नहीं सुहाते, रसोई में चटाई बिछाकर भोजन करना उन्हें अच्छा नहीं लगता, अब तुम ही बताओ, मैं भावनात्मक संबंधों का साथ दू या अपनी संतानों का ।"[8]

'औरत का भूगोल' कहानी पुनः यह विचार करने, सोचने और विमर्श करने पर मजबूर करती है कि उर्मी इस कहानी की कैसी स्त्री पात्र है जो यह जानती है कि निखिल विवाहित है तथा उसकी एक पुत्री है फिर भी वह निखिल की ओर आकर्षित हो जाती है । उसकी चाहत निखिल के प्रति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह उसके दांपत्य जीवन को ही महत्वहीन समझने लगती है । वह बिना फेरे तथा विवाह के ही उसे अपना पति मान कर स्वयं को उसकी अर्धांगिनी स्वीकार लेती है । यह भावना स्पष्ट करती है कि आज स्त्री स्वयं को इतनी आत्मनिर्भर बना चुकी है कि वह समाज के नियमों, परंपराओं की उपेक्षा कर स्वयं की शर्तों पर जीवन जीना अधिक श्रेष्ठकर मानने लगी है ।

'मकान खाली है' कहानी के अंतर्गत भी गरिमा के शब्दों के माध्यम से हम समाज में आ रहे परिवर्तन एवं चेतना को अनुभव कर सकते हैं । जब कजरी के द्वारा सेठ सुखदेव को अपना बच्चा न देने पर गरिमा कहती है । "मैं सही कह रही..... कजरी महान् है... यदि यह संसार में मुखर होकर तुम्हारा बच्चा जन सकती है, तो क्या तुम इसे पत्नी के तौर पर स्वीकार नहीं कर सकते...।"[8] वर्तमान में गरिमा जैसी स्त्री के विचारों से ही समाज में चेतना का संचार होता है । आवश्यकता है पुरुष मानसिकता को परिवर्तित करने की जो पुरुष की सोच से ही संभव है । तभी समाज में सामाजिक परिवर्तन लाकर चेतना का संचार हो सकता है ।

'कागज पर खुशबू' कहानी के अंतर्गत सुयश और सुलक्षणा दोनों ही चिकित्सकीय कार्य में संलग्न थे । जहाँ चिकित्सा क्षेत्र में भी पैसे को लेकर के लोग आज चिकित्सा को भी व्यवसाय मानकर गरीब और अमीर सभी को लूट रहे हैं वहीं सुयश और सुलक्षणा गरीब रोगियों की सेवा में स्वयं को समर्पित कर देते हैं । एक दिन सुलक्षणा घर पहुँची तो द्रवित होते हुए सुयश से कहा, "सुयश ईश्वर ने हमें यह शरीर किसी विशेष उद्देश्य से दिया है । हम चिकित्सक हैं, सो हमारा कार्य भी रोगियों का उपचार कर के उनके स्वास्थ्य की रक्षा करना है । क्यों ना कोई बड़ा संकल्प लेकर उस संकल्प को जीवन भर के लिए धारण करें ।"[9]

सुलक्षणा कहती है "सोच लीजिए... प्रत्येक संकल्प त्याग की अपेक्षा करता है । इसके लिए हमें अपने भौतिक एवं दैहिक सुखों का त्याग करना पड़ सकता है।... मैं चाहती हूँ कि निशक्त एवं असहाय रोगियों की सेवा में हम अपने स्वयं को भूल जाएँ ।"[10] आज वर्तमान समाज में जब सभी लोग अपने ही स्वार्थ से परिपूर्ण है और एक–दूसरे के साथ संबंध भी अपनी स्वार्थ सिद्धी हेतु जोड़ते हैं । ऐसे में यह दोनों भी अपने चिकित्सा व्यवसाय से काफी धन अर्जित कर सकते थे परंतु उनका त्याग एवं दूसरों की सहायता करने का यह संकल्प वाकई में सामाजिक परिवर्तन का ही शुभ संकल्प है ।

निष्कर्षः

अतः कह सकते हैं आज व्यक्ति के रक्त–संबंध सभी एक– दूसरे से विलग हो चुके हैं । प्रत्येक व्यक्ति एकल जीवन जीना चाहता है तथा अपने ही बारे में अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु ही सोचता है । सामाजिक परिवर्तन का नाता किसी विशेष व्यक्ति या समूह के विशेष भाग तक नहीं होता है। वे ही परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहे जाते हैं जिनका प्रभाव समस्त समाज में अनुभव किया जाता है। आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन न तो मनचाहे ढंग से किया जा सकता है और न ही इसे पूर्णतः स्वतंत्र और असंगठित छोड़ दिया जा सकता है । आज हर समाज में नियोजन के द्वारा सामाजिक परिवर्तन को नियंत्रित कर वांछित लक्ष्यों की दिशा में क्रियाशील किया जा सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1) प्रो. मुंशीलालः समाजशास्त्र, पृ. सं.2
2) सं. डॉ. गोविंद चातकः आधुनिक हिंदी शब्दकोश, नई दुनिया, तक्षशिला, 1986, पृ. सं.334
3) डॉ. प्रेम कुमारः समकालीन हिंदी उपन्यास, अलीगढ़ इंदु प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1983, पृ. सं. 50
4) डॉ. कुसुम अंसलः आधुनिक हिंदी उपन्यासों में महानगर, नई दिल्ली, अभिव्यंजना प्र. प्रथम संस्करण 1993, पृ. सं.225
5) वही, पृ. सं.225
6) डॉ. सुधाकर आशावादी, एक और युद्ध, कामाक्षी, संस्करणः 2010 निरुपमा प्रकाशन, मेरठ, पृ. सं.13
7) वही, पृ. सं.13

8) डॉ. सुधाकर आशावादी, बिना नींव का रंगमहल पृ. सं.40

9) डॉ. सुधाकर आशावादी, एक और युद्ध, मकान खाली है, संस्करणः 2010 निरुपमा प्रकाशन, मेरठ, पृ. सं.45

10) सुधाकर आशावादी, कागज पर खुशबू-, संस्करण: 2015 निरुपमा प्रकाशन, मेरठ, पृ. सं. 15

11) वही, पृ. सं. 16

"हिंदी बाल कहानी–साहित्य में पौराणिकता"

इगडे शीतल कचरु (शोधार्थी)
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय,
छत्रपती संभाजी नगर
Mobile–9689632181
ई–मेल:–shitaligade@gmail.com

शोध सारांश:

मनुष्य की शैशावस्था के पश्चात् आने वाली बाल्यावस्था सामाजिक शिक्षा का प्रथम सोपान है । लगभग दस–बारह साल की उम्र तक बाल्यावस्था कहलाती है । इस उम्र में बालक सृष्टि की हर चीज से परिचित होना चाहता है। इस उम्र में बच्चों में प्रचंड जिज्ञासा वृत्ति रहती है । ऐसे समय पर उनकी ज्ञानलालसा तृप्त होना आवश्यक हैं अन्यथा बच्चों की मनोदशा कुंठित होने का खतरा उत्पन्न हो सकता है । इस दिशा में हिंदी की बाल कहानियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । प्रस्तुत शोधालेख में हिंदी की पौराणिक बाल कहानियों पर प्रकाश डाला गया है । हिंदी की पौराणिक बाल कहानियाँ बच्चों को देवी–देवताओं की कहानियों के माध्यम से पोषक संस्कार देती है । साथ ही उन्हें माता–पिता की सेवा, बड़ों का आदर करना, किसी भी बात का घमंड न करना, एकता बनाये रखना, संगठन से रहना, ईमानदारी से कमाई करना, कर्तव्य का पालन करना, सेवाभाव वृति, निःस्वार्थी वृत्ति, चरित्र सपन्नता जैसी अच्छी–अच्छी सीख हिंदी की पौराणिक बाल कहानियों किस प्रकार देती है इस बात को समझाया है ।

बीज शब्द: पौराणिक, हिंदी बाल कहानियाँ, सीख, बच्चे, शिक्षा, समाज, आदि ।

पौराणिकता का अर्थ पुराण संबंधी या फिर जिसका उल्लेख पुराणों में हुआ हो । पुराण शब्द को अंग्रजी में मिथालोजी' भी कहते हैं । अंग्रेजी का मिथ शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है कहानी । ग्रीक लोगों की प्राचीन कहानियों में मनुष्य और देवताओं के परस्पर संबंधों का वर्णन होता था । इसलिए इन कहानियों का अर्थ सामान्यतः देवताओं की कहानियाँ इस रूप में किया गया । आदिम जाति के मनुष्यों में ब्रह्मांड को लेकर अनेक प्रश्न उत्पन्न होते थे । जैसे कि पृथ्वी कैसे बनी? चाँद, सूरज, तारें कैसे बने? मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि कैसे बनें। इन प्रश्नों के समाधान हेतु उन्होंने ऐसी कहानियों का सृजन किया जिन्हें 'मिथ' कहा जाता है । पुराणों का वर्ण्य. विषय कैसे बना? इस संदर्भ में डॉ. हरवंश लाल शर्मा ने पुराणों के वर्ण्य विषय के संबंध में लिखा है–

"पुराणों का विषय प्रायः सृष्टि का प्रकरण ही रहता था । इतिहास और पुराणों का भेद हमारे वाङ्मय में प्रसिध्द ही है । स्वयं पुराणों में ही पुराणों के पाच लक्षण बताए है. (1) सर्ग अर्थात् सृष्टि का विज्ञान, (2) प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टि का विस्तार, लय और फिर से सृष्टि, (3) सृष्टि की आदि वंशावली (4) मन्वंतर (5) वंशानुचरित ।"[1] भारतीय पुराणों में देवताओं की कहानियों और सृष्टि की निर्मिति के रूप को एक अनोखी शैली में प्रस्तुत किया है । भारतीय हिंदू समाज पुराणों को अपने धर्मग्रंथ भी मानते हैं ।

पुराणों की कहानियों को साहित्य ने अपनी रोचक तथा सरल भाषा में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया । इसमें बाल कहानी. साहित्य भी अग्रसर है । बाल कहानी साहित्य में इन पौराणिक कहानियों को इस प्रकार बच्चों के सामने प्रस्तुत किया जाता

है कि बच्चे इसमें खो जाते हैं और अपने देवी, देवता तथा प्रकृति की जानकारी एवं प्रेरणा प्राप्त करते हैं । पौराणिक कहानियों के लेखन में हिंदी बाल कहानी साहित्य का भी अमूल्य योगदान है ।

बालसाहित्य बालक के कोमल मन का मनोरंजन करने के साथ ही उसके 'स्व' को विकसित करता है । बालसाहित्य किसे कहे इस संबंध में भी अनेक मतभेद दिखाई देते हैं । इस संदर्भ में अंग्रेजी बालसाहित्य के समीक्षकों का मत है कि यह आवश्यक नहीं है कि बच्चों के लिए लिखी गई सभी पुस्तकें साहित्य ही हो और न यह आवश्यक है कि बड़े लोग जिसे बालसाहित्य मानते हैं बाल रूचि के अनुकूल चुनी गई पुस्तके उस कसौटी पर खरी उत्तर जाए । ऐसे लोग भी है जो बड़ों की बातों का सरल ढंग से विवेचन ही बालसाहित्य मान लेते हैं । लेकिन यह विचार बच्चों को बड़ों का सूक्ष्म संस्करण सिद्ध करता है और वास्तव में यह धारणा बचपन को गलत तरह से समझने से उत्पन्न हुई है क्योंकि बच्चों का वास्तव में जीवन अनुभव बड़ों से बिल्कुल भिन्न होता है । उनकी एक अलग दुनिया होती है जिसमें जीवन के मूल्य बाल सुलभ मनोवृत्ति के आधार पर निर्धारित होते हैं बड़ों के अनुभव के आधार पर नहीं ।

हिंदी में मौलिक बालसाहित्य लेखन की शुरूआत वास्तव में बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में ही हुई । सन् 1914 में विद्यार्थी, 1915 में शिशु और 1917 में बालसखा आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ । उस समय सुप्रसिध्द लेखक, कवियों ने इसमें लेखन करके अपना योगदान दिया । जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, कामता प्रसाद, गुरु, डॉ. महेंद्रनाथ गर्ग, चंद्रमौलि शुक्ल आदि प्रमुख थे । इन दिनों स्वतंत्र रूप से बालसाहित्य का लेखन आरंभ होने का और एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि यूरोपिय भाषाओं से खासकर अंग्रेजी भाषा से बालसाहित्य भारत में आने लगा था । साथ ही उस समय स्वतंत्रता संग्राम गति पकड रहा था। माता–पिता तथा शिक्षाशास्त्री बच्चों को विदेशी या पाश्चात्य धर्म और संस्कृति से बचाने के लिए उन्हें भारतीय संस्कार देने के लिए विशिष्ट माध्यम की आवश्यकता महसूस कर रहे थे । 'बालसखा' जैसी साहित्य पत्रिका ने स्पष्ट किया था कि बच्चों में रुचि, उच्च भावनाओं का निर्माण दुर्गुणों को निकालना, बच्चों में सुधार, भारतीय संस्कृति परंपरा, धर्म की रक्षा, देशप्रेम, गौरवशाली इतिहास का ज्ञान, स्वतंत्रता और अभिमान आदि उद्देश्यों से प्रकाशित किया जाएगा ।

हिंदी की समग्र बाल कहानियों को देखा जाए तो बहुत सी कहानियों में पौराणिक संदर्भ मिलते हैं जिसको आधार बना कर बच्चों पर एक पोषक संस्कार किया जा सकता है । बच्चे जो पढ़ते हैं उन बातों का उन पर गहरा असर पड़ता है । बच्चों को बढ़ती उम्र में जिस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने मिलेंगी उसी प्रकार के संस्कार उनमें आयेंगे ।

बाल कहानी साहित्य में पौराणिकता ऐसा सफल माध्यम है जिससे बच्चों को अच्छे विचार तथा अच्छे संस्कार भरपूर मात्रा में मिलते हैं । इस माध्यम से बच्चों को एक पोषक विचारधारा मिलती है । पौराणिक कहानियाँ हमें कई बातें सिखाती हैं । जगतराम आर्य का कहानी संकलन पूर्वजों की कहानियाँ में 'माता पिता की सेवा' कहानी में महात्मा श्रवण को राजा दशरथ द्वारा बाण लगता है तब वह अपने प्राणों की परवाह किए बगैर माता–पिता की ही चिंता करता है । राजा दशरथ से कहता है– "मैंने तो आपके क्षमा माँगने से पहले ही क्षमा कर दिया है । आप कृपा कर यह जल ले मेरे प्यासे माता पिता को पिलाइए क्योंकि वे बहुत प्यासे हैं । उनसे जाकर आप क्षमा माँगे । कहीं ऐसा न हो कि वे दोनों आपको श्राप दे दें ।"[2]

महात्मा श्रवण के वक्तव्य से यह पता चलता है कि उनके जीवन में माता–पिता का स्थान सर्वोपरि था, परंतु आजकल एकल परिवार पध्दति के अंतर्गत घर में माता–पिता और बच्चें इतना ही परिवार है । माता–पिता काम के सदर्भ में दिन भर घर से बाहर रहते हैं तो बच्चों को अच्छे संस्कार देने वाले परिवारजन भी घर में नहीं रहते ऐसे अवसर पर माता पिता की सेवा जैसी बाल साहित्य की पौराणिक कहानियाँ बच्चों के मन में माता पिता के प्रति आदरभाव तथा सेवाभाव की अमूल्य शिक्षा प्रदान करती है ।

हिंदी बाल कहानी साहित्य में कई ऐसी पौराणिक कहानियों हैं जो बच्चों को हर तरह से समझदार तथा संपन्न बनाती हैं । जैसे कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु उसका घमंड होता है । इसी के चलते मनुष्य सब कुछ खो देता है। यही बात 'राकेश भारती' अपनी 'दम्भ कहानी से समझाते हैं । कहानी में घमंड के कारण राजा अपना राजपाट खो बैठता है, उसे अनेक कठिनाइयों, युध्दों का सामना करना पडता है तथा किसी भी विषय की गहराई न जानने की प्रवृत्ति के कारण विश्वरूपा का वध करता है । इस बात का बदला लेने के लिए विश्वरूपा के छोटे भाई वृत्तासुर ने आक्रमण किया तो इंद्रलोक से सभी भाग कर विष्णु के पास मदद की गुहार लगाते हैं । उस समय विष्णु इन्द्र से कहते हैं– "तुमने दम्भ में आकर गुरु बृहस्पति का अपमान कर डाला, तब नहीं सोचा और फिर महाक्रोधी दुर्वासा से जा टकराएँ । और अब क्या सोचकर तुमने उस परम विद्वान और शान्तिप्रिय तपस्वी विश्वरूपा का वध किया है, बता सकते हो ।"[3] अर्थात् इंद्र के अहंकार की वजह से उसे राज सिंहासन खोना पडा, विश्वरूपा की हत्या का दोषी बनना पड़ा, इतना ही नहीं वृत्तासुर को मारने के लिए वज्रास्त्र के निर्माण के लिए ऋषि दधिचि को देह त्यागना पड़ा । ये सारी घटनाएँ इंद्र के घमंड की वजह से घटी । कहानी के माध्यम से बच्चों को घमंड न कर विनम्रता से जीवन यापन करने की शिक्षा प्राप्त होती है । घमंड में कभी किसी को छोटा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि एक छोटी–सी चोटी भी एक विशालकाय हाथी पर भारी पड़ती है । इसलिए कभी किसी को छोटा समझने की भूल नहीं करनी चाहिए, यही सीख बच्चों को इस कहानी दवारा मिलती है । इतना ही नहीं तो इस कहानी में 'एकता का महत्व' भी समझाया है । तारकासुर जब इद्रलोक पर विजय प्राप्त करता है तब अपने असूर समूह से कहता है "अब प्रसन्न होकर सभी असुर स्वर्ग की सुख सुविधाओं का उपभोग करो, समूचे देवगण अब तुम्हारे सेवक हैं । परन्तु ध्यान रहे कि यह सब जिस एकता से प्राप्त हुआ है वह तुम सभी दैत्य–दानवों में निरन्तर बनी रहे ।"[4]

यह सच है कि एकता अर्थात् संगठन से ही सबका विकास होता है, विघटन से मात्र विनाश ही होता है । जिस तरह तीन बैल मित्र होने के कारण बाघ कभी उनका शिकार नहीं कर पाया परन्तु तीनों बैलों में फूट पड़ने पर बाघ ने एक–एक कर सबका शिकार किया । इसलिए संगठन अर्थात् एकता का होना आवश्यक है यह सीख बच्चों को उस पौराणिक कहानी के अंतर्गत मिलती है ।

शुध्द कमाई को एक प्रकार से अच्छा कर्म भी कह सकते हैं । अच्छा कर्म करोगे तो शुध्द कमाई अपने आप होगी । बुरे कर्मों से शुध्द कमाई कैसे होगी? और बुरे कर्मों में कोई साथीदार भी नहीं होता । उन कर्मो का फल उसे ही भुगतना पड़ता है । इसी सत्य का ज्ञान जगतराम आर्य की 'डाकू से ऋषि' इस कहानी में होता है । वाल्मीकि पूर्वाश्रम में डाकू थे । एक बार नारद ने वाल्मीकि को सही–गलत का ज्ञान देते हुए बुरे कर्म स्वयं को ही भुगतने पड़ते है इसमें कोई साथ नहीं देता इस सच्चाई को समझाया । तब वाल्मीकि ने घर जाकर सबसे पूछा कि उसके इन कर्मो में कौन उसका साथ देगा? तब वाल्मीकि की माँ वाल्मीकि से कहती है– "हमें पालना तुम्हारा कर्तव्य है । चाहे जैसे भी धन कमा कर लाओ । परन्तु यदि तुम बुरा कार्य करते हो, तो उसका फल तुम्हें अकेले ही भोगना पड़ेगा ।"[5] वाल्मीकि की माँ के इस वक्तव्य से वाल्मीकि को सत्य का ज्ञान हुआ कि बुरे कर्म का फल हमेशा बुरा होता है और उसे स्वयं भुगतना पड़ता है, कोई साथ नहीं देता । इस सत्य का ज्ञान होते ही वाल्मीकि डाकू से ऋषि बन गए और आगे चलकर उन्होंने 'रामायण' महाकाव्य का सृजन किया । इस तरह पौराणिक कहानियाँ बच्चों को बुरे कर्म और अच्छे कर्म का अंतर समझाकर जीवन में हमेशा अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देती हैं ।

जगतराम आर्य की 'और एक कहानी' युधिष्ठिर की धर्म परीक्षा बच्चों को समाज के प्रति सेवाभाव सीखाती है । दीन–दुखियों के दुख दूर कर उनकी सेवा करने का पाठ पढाती है । कहानी में जीवन भर अच्छे कार्य तथा सत्य आचरण के कारण युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने के लिए स्वयं इन्द्र उन्हें लेने आएँ तब रास्ते में उनकी परीक्षा ली जाती है, जिसमें वे सफल होते हैं । स्वर्ग के रास्ते में नरक के जीव दुख से बिलग रहे थे वे युधिष्ठिर में नरक में रहने का आग्रह करते हैं तो इंद्र स्वर्ग में चलने का । तब

युधिष्ठिर धर्मराज इन्द्र से कहते हैं– "धर्मराज! इन दुखियों को बिलखता छोड़कर में आगे नहीं जा सकता । यदि मेरे यहाँ रहने से इन हजारों दुखियों का दुख तनिक भी कम होता है, तो मुझे इस नरक में ही रहना स्वीकार है । मैं इन लोगों के दुख के लिए स्वर्ग को भी छोड़ने को तैयार हूँ । क्षमा करो धर्मराज। अब मैं तुम्हारे साथ स्वर्ग नहीं जाऊँगा । तुम अकेले ही जाकर मेरी ओर से देवताओं से क्षमा माँग लेना ।"[6] अर्थात् यहाँ पर समाज में दुखी लोगों की किस प्रकार सेवा कर उन्हें दुखों से बाहर लाया जाएँ यह सीख मिलती है । एक प्रकार से यहाँ समाज सेवा की प्रेरणा ही मिलती है ।

पौराणिक कहानियों से बच्चों के मस्तिष्क का अच्छा पोषण होता है, समाज में एक अच्छा इन्सान बनने की प्रेरणा मिलती है । ब्रजभूषण गुप्ता की 'कच का चरित्र सुख' कहानी के माध्यम से चरित्र सपन्नता की सीख मिलती है । कहानी में जब कच संजीवनी विद्या सीखने दैत्यगुरु शुक्राचार्य के आश्रम में आता है तब देवयानी से उसकी मुलाकात होती है । देवयानी कच से प्रेम कर बैठती है, लेकिन कच उसे गुरु की पुत्री होने के कारण बहन मानता है । कच संजीवनी विद्या सीखकर वापस लौटने की तैयारी करता है तो देवयानी विवाह का प्रस्ताव रखती है तब कच देवयानी को अस्वीकार करता है तब देवयानी उसे संजीवनी विद्या भूल जाने का श्राप देती है, तो कच देवयानी से कहता है– "संजीवनी विद्या के भूल जाने का दुःख तो मैं झेल जाऊँगा, लेकिन अपना चरित्र खो बैठा तो दुःख से मर जाऊँगा ।"[7] इस प्रकार कच के द्वारा यहाँ पर चरित्र संपन्नता पर जोर दिया है । यही सच है क्योंकि एक निरोगी समाज का सृजन तभी हो सकेगा जब वह समाज चरित्र संपन्न होगा । यह सीख हिंदी बाल पौराणिक कहानियाँ देती है ।

समाज की प्रगति तभी होती है जब वह समाज चरित्र संपन्न होता है । इतना ही नहीं तो यह कहानियाँ मनुष्य को अधर्म तथा अनीति का विरोध कर नीति के मार्ग पर चलना सीखाती है । शैलेन्द्र प्रसाद कृत 'चाण्डाल का रूप' कहानी में श्रीकृष्ण जब महाभारत का युध्द समाप्त कर बहन सुभद्रा को लेकर द्वारिका के लिए चल पड़े तो रास्ते में मारवाड़ में 'मुनि उत्तक' के आश्रम में गए । तब कृष्ण और उत्तक ऋषि के सवाद से अधर्म का दुष्परिणाम सामने आता है । कृष्ण उत्तक ऋषि से कहते हैं– "कौरव अन्याय अधर्म और अनीति के साक्षात् अवतार थे । मैंने स्वय उन्हें बहुत समझाया कि वे अत्याचार और अधर्म छोडकर, धर्म और नीति के पथ पर चलें, पर उन्होंने मेरी बात अनसुनी कर दी ।"[8] अर्थात् अधर्म और अनीति के कारण ही कौरवों का विनाश हुआ । इसलिए हर समय मनुष्य को नीति का मार्ग अपनाना चाहिए जिससे उसका विनाश नहीं विकास होगा यही सीख प्रस्तुत कहानी से मिलती है ।

हिंदी बाल कहानी– साहित्य में पौराणिक कहानियों के अंतर्गत बच्चों को कई प्रकार से अच्छी सीख मिलने के साथ ही बच्चों का मनोरंजन भी होता है । अर्थात् बच्चों को मनोरंजन के द्वारा कहानी अपनी ओर आकर्षित करती है । जगतराम आर्य की 'नारद मुनि की हास्य–कथा' कहानी में नारद मुनि हँसने के लिए छोटी–मोटी लीलाएँ, नाटक रचाया करते थे इसका चित्रण है और उनकी इसी लीला के कारण ही पारिजात वृक्ष को कृष्ण द्वारा स्वर्ग से धरती पर लाया गया । नारद मुनि सत्यभामा से कहते हैं– "अब तुम श्रीकृष्ण से रूठ जाओ । जब वे तुम्हें मनाने आएँ तो कहना, अपने रुक्मिणी को पारिजात की कली दी है, अब मैं तभी मानूँगी जब आप मुझे पारिजात का पेड लाकर देंगे ।"[9] अर्थात् नारदमुनि की छोटी मोटी लीलाओं में मनोरंजन होता ही था परन्तु उसके साथ ही उसमें समाज का हित छुपा रहता था । ऐसी कहानी से बच्चों का मनोरंजन होता है जो उनके थके हुए शरीर तथा मन में ऊर्जा का सृजन कर कहानियों की ओर आकर्षित करता है ।

निष्कर्षतः हिंदी बाल कहानी–साहित्य में पौराणिक कहानियाँ एक ऐसा विषय है जिससे बच्चों को भरपूर आनंद तथा ज्ञान मिलता है । भगवान की कहानियों के माध्यम से बच्चों को एक सही दिशा देने का काम ये कहानियाँ करती हैं । बच्चे भी इन कहानियों के माध्यम से एक नई दिशा प्राप्त कर उस राह पर चलने का प्रयास करते हैं, जिससे समाज अपने आप ही निरोगी एवं सदृढ बन विकास के पथ पर आगे बढ़ता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 डॉ. हरवंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, पृ. 109

2. जगतराम आर्य, पूर्वजों की कथाएँ, माता–पिता की सेवा, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, 2013, पृ. 31

3. राकेश भारती, भारतीय पौराणिक कहानियाँ, दम्भ, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2010, पृ. 91–92

4. राकेश भारती, भारतीय पौराणिक कहानियाँ, स्कन्द, पंकज बुक्स, दिल्ली, 2010, पृ. 28

5. जगतराम आर्य, पूर्वजों की कथाएँ, डाकू से ऋषि, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, 2013, पृ.37

6. जगतराम आर्य, पूर्वजों की कथाएँ, युधिष्ठिर की धर्म परीक्षा, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, 2013, पृ. 19

7. ब्रजभूषण गुप्ता, वह सब देखता है, कच का चरित्र. सुख, प्रखर प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.20

8. शैलेंद्र प्रसाद, हमारे हरिजन भक्त, चाण्डाल का रूप, स्वर्ण जयंती प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 06

9. जगतराम आर्य, पूर्वजों की कथाएँ, नारदमुनि की हास्यकथा, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, 2013, पृ.12.

एन. चंद्रशेखरन नायर की कहानियों में वर्णित जीवन

पंकज कुमार

(जूनियर रिसर्च स्कॉलर)

अंग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 500007

pkmaurya222@gmail.com

9807135737 / 8726286446

शोध सारांश

केरल में हिंदी को समृद्ध करने वालों की सूची में एन. चंद्रशेखरन एक महत्वपूर्ण नाम है जिन्होंने हिंदी में कविता, कहानी, नाटक, लेख आदि में मौलिक लेखन कार्य किया है । एन. चंद्रशेखरन के दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें वर्णित जीवन के विभिन्न रूपों को इस शोध आलेख के माध्यम से दिखाया गया है । कम मगर विविधता से परिपूर्ण उनकी कहानियों में जीवन के बहुत से चित्र सजीव हो गये हैं । उनकी कहानियों में प्रेमचंद के आदर्शवादी जीवन के साथ 'कफन' की पीडा विद्यमान है ।

दक्षिण में हिंदी के सच्चे सेवक एन. चदेशखर की जन्मभूमि और कर्मभूमि दोनों ही केरल रही है । प्रारंभिक शिक्षा केरल में प्राप्त करने के बाद इन्होंने एम.ए. की शिक्षा बी.एच.यू. व पीएच–डी की डिग्री बिहार यूनिवर्सिटी से प्राप्त की । शुरुआती जीवन में इन पर गाँधी का जो प्रभाव पड़ा वह इनके साथ ताउम्र बना रहा । ये प्रभाव इनके साहित्य साधना में भी आया । गाँधीवादी नायर ने हिंदी को अन्य भारतीय भाषाओं की प्रतिद्वंद्वी के रूप में नहीं देखा । अपितु वो भाषाओं में भावात्मक एकता को स्थापित करने के पक्षधर रहे और राष्ट्रवादी नायर के लिए हिंदी एकता को स्थापित करना ही मूल उद्देश्य था ।

नायर जी ने हिंदी को संपन्न करने का कार्य संस्थागत स्थापना पत्रिका ने प्रकाशित अनुदित लेखन के साथ मौलिक लेखन के माध्यम से किया । इनके द्वारा कविता, नाटक, कहानी जीवनी, निबन्ध और आलोचना जैसी सभी विधाओं में मौलिक लेखन कार्य किया गया । 1980 में केरल हिंदी साहित्य परिषद, तिरुवन्नतपुरम् की स्थापना के माध्यम से इन्होंने इसको और गति प्रदान की । डॉ नायर की कला, साहित्य और हिंदी की सेवा को देखते हुए इन्हें 2020 में 'पद्मश्री' सम्मान से नवाजा गया । विशेषतः हिंदी की उत्कृष्ट सेवा को देखते हुए 2015 में 'विश्व हिंदी सम्मान' प्रदान किया गया ।"[1] नायर के बारे में स्वामी विशानन्द ने ठीक ही कहा है–

"उत्तर दक्षिण बीच स्नेह का जिसने सुन्दर सेतु बनाया
ऐक्य सूत्र सधीनकारणी हिंदी का संसार सजाया
हिंदी सेवा प्रतीक को
मेरा है शत–शत अभिनन्दन ।"[2]

'देवयानी' जैसा प्रौढ नाटक व 'हिमालय गरज रहा है' जैसी राष्ट्रीयता से ओत प्रोत कविता लिखने वाले नायर के दो कहानी संग्रह 'हार की जीत' (1964), 'प्रोफेसर और रसोइया' (1974) प्रकाशित हुए, जिनमे विविधता से परिपूर्ण कुल 17 कहानियाँ संग्रहित हैं ।

'हार की जीत' नाम से हिंदी में दो रचनाकारों सुदर्शन और कथा सम्राट प्रेमचंद की कहानियाँ भी बहुत प्रसिद्ध है परन्तु नायर की यह कहानी कहीं से भी उनसे कम नहीं जान पड़ती है । कहानी स्त्री–पुरुष जीवन मूल्यों को अपनी विषयवस्तु बनाती है । पुरुषवादी मनोविज्ञान और चरित्र कहानी को गति देते हैं । कहानी कर्णाला के शकी राजा और उसकी पतिव्रता पत्नी का जीवन वर्णन है । लेखक इस कहानी के माध्यम से भारतीय आदर्शवादी स्त्री का जीवन उकेरते हैं । जिसके लिए पति द्वारा त्यागा जाना भी उसको पथभ्रष्टा नहीं बनाता । इन सबके बाद भी नायिका कहती है– "महाराज तो मेरे लिए परमेश्वर सदृश है । इस उम्र में उनके अतिरिक्त और किसी की छाया तक मेरे हृदय–मंदिर में नही पड़ी है । पुण्य से ही वे मुझे प्राणनाथ के रूप में मिल गये ।"[3] भारतीय नारी का जीवन हमेशा से कहानी की विषयवस्तु रहा है, जिसमें उसका दुत्कार, बंधन, संघर्ष, समर्पण, निष्ठा आदि चित्रित होता है। यह कहानी में भी उसी ढर्रे में चलती है जिसमें सामाजिक अपमान के बाद भी विद्रोह की ज्वाला नही फूटती है । शायद यह स्त्री जीवन की सबसे बड़ी विसंगति है । जिसको नायर ने भी उसके हाल पर ही छोड दिया है । जोकि कटु मगर स्त्री जीवन यथार्थ भी है ।

'चमार की बेटी' चौदह वर्षीय काशी की ऐसी प्रतिभा संपन्न कवयित्री 'कांति' की कहानी है जो समाज की विषबेल फैलने नहीं देती । बेमेल विवाह जैसा विषय कथा सम्राट प्रेमचंद के रचना संसार में भी बहुतायत में आया है, 'नया विवाह' कहानी और 'निर्मला' उपन्यास के बेमेल विवाह की कथा हिंदी पाठकों ने अवश्य सुन रखी होगी । कहानी दलित जीवन की पीड़ा को उस समय आवाज देती है जब हिंदी में दलित विमर्श जैसा कोई विमर्श था ही नहीं । अर्थ और जाति की भयावहता से पटा पड़ा ये भारतीय समाज उसे आत्महत्या तक पहुँचा देता है । यह जीवन की कटुता ही तो है जिस काशी में मरने मात्र से सब तरते हैं वहाँ रहने वाले दलित आज तक नही तरे । कहानी जिस मार्मिकता से बनारस के जीवन चित्रों को उकेरती है कही न कही उनका बी.एच यू. में अध्ययन के दौरान जीवन का यथार्थ अनुभव ही है । एक ही स्थान पर दो भिन्न छोर के जीवन दर्शन कहानी में हो जाते हैं ।

नायर जी की एक अन्य कहानी 'कान्ह गायब हो गया है' भी दीपक तले अँधेरे का वर्णन करती है । धर्म का बेजा इस्तेमाल कैसे एक चित्रकार को तोड़ देता है? कैसे धार्मिक जीवन जीने वाला व्यक्ति अंत में निराशा को पाता है? कहानी का मुख्य कथ्य है । एक धार्मिक व्यक्ति जो कि धार्मिक संस्थाओं से मिले पुरस्कार के लिफाफे को इस भरोसे के साथ देखता है, "देखो तो इसे खोलना मत हिफाजत से रखो । न जाने कब इसे खोलने की जरूरत पड़े ।"[4] अंत में दर्ज पाँच सौ की जगह पच्चीस ही पाता है और बेटी की इज़्ज़त भी गंवाता है, और क्या ही विद्रूपता होगी जीवन में । धार्मिकता सदैव से ही शोषण का जरिया रही है जिसको डॉ. नायर ने सफलता से रेखांकित किया है । कहानी को पढ़ते हुए मार्क्स अनायास ही याद आ जाते हैं और उनकी उक्ति 'धर्म एक अफीम हैं कानो में गूंजने लगती है ।

प्रेमचंद ने व्यवस्था के मारे घीसू–माधव का चित्रण जिस तरीके से कफन कहानी में दर्ज किया है वैसी ही कुछ दरिद्रता का हृदयविदारक वर्णन नायर जी ने 'भवोति अम्मे' कहानी में किया है । एक महिला, जिसकी चार बेटियाँ हैं, उसको जीवन ने इतनी धोबी पछाड़ मारी है कि वह सामान्य मानवीय व्यवहार भी नहीं कर पाती है । गुस्से में अपनी बेटी के सीने में लात मारने को भी उतारू हो जाती है । लेखक उसका वर्णन कुछ इन शब्दों में करते हैं– "वाह री भवोति अम्मा । किस धातू की तू बनी है? तू उस जाति की तो नहीं है जो शिंशपा वृक्ष के नीचे वैदेही की रखवाली किये बैठी थी? अथवा नाक कान से हाथ धोये, धूल उडाती, बिलखाती शूर्पनखो वाली के रुधिर में से उत्पन्न हुई है ।"[5]

जीवन की परेशानियों ने उसे इंसानों की टोली से भी बाहर कर दिया है । उसकी रग–रग में समाई यह वेदना कहानी में आँसू बन कर टपक पड़ती है । व्यक्ति और समाज की विभिन्न परतों को जिस तरह से कहानी ने छुआ है उसने इस कहानी के समाजशास्त्रीय अध्ययन की माँग को आगे बढ़ाया है ।

एक अन्य कहानी 'आप का नाराणीयम्' भी भूख और गरीबी का वृतांत है, जोकि सदियों से चली आ रही लोकोक्ति 'भूखे भजन न होए गोपाला' को चरितार्थ करती है । लेखक की पत्नी का यह कथन बताता है भूखे के जीवन में पहले क्या जरुरी है– "आपका नारायणीयम् आया है । अब अक्सर रोज आया करता है । कुछ खा के ही उठेगा । नियम–सा हो गया है । हाँ सुनिए एक दिन उसने कहा कि उसका गुरुवायुर जाना अच्छा नहीं है ।"[6] जीवन का सत्य यही है आदर्श पर यथार्थ हमेशा ही भारी पड़ता रहा है । जीवन मे पेट एक कटु यथार्थ है और अध्यात्म एक आदर्श ।

'प्रोफेसर और रसोइया' संपन्न और विपन्न के बीच की विडम्बना को रेखांकित करती हुई कहानी है । जिसके पास सब कुछ है वह कुछ खा नहीं सकता है क्योंकि रोग उसके संगी साथी हो गये हैं । वहीं दूसरी ओर रामू रसोइया का जीवन है जो खा तो सकता है पर उसके पास खाने को नहीं है । रामू के जीवन मरण को ये पक्तियाँ आसानी से उद्घाटित करती हैं– "ओफ दुनिया में कितनी अच्छी–अच्छी चीजें हैं पर उन करोडों अच्छी चीजों से आपका क्या वास्ता! हाँ बापूजी, आप तो जरा देखिए... जो भी चीज़ मिले उसे मैं खा लूँगा । सॉप को भी खा जाऊँगा, अगर उलटे वह हमें काटने न दौडे । चार दिन से कुछ न खाया, बस, तो कुछ न बिगड़ा । देखिये, मैं तीर की तरह दौड सकता हूँ... ऊँचे–फून्चे पेड पर चढ सकता हूँ ।... हमें मांसाहार अथवा फलाहार से क्या मतलब? हमे तो जीना है और जब मरना है, तब बस मर ही जाना है ।"[7] कहानी आपके आस–पास से सीधा मिलन सा जान पड़ती है । आज से आधे शताब्दी पहले लिखी गयी यह कहानी अपने विषय के कारण आज भी प्रासंगिक है । और जब तक जीवन स्तर की ये खाईयाँ पट नहीं जाती तब तक यह कहानी जीवित रहेगी ।

"काठ का कफन" कहानी जीवन की वास्तविकताओं से दो–चार कराने में कोई कसर नहीं छोडती है । मात्तन, मौली और मरियम की यह कथा जीवन के सबसे बड़े सच अर्थात मृत्यु की कथा है । मौत के लिए कफन बेचने वाले को मृत्यु के बाद उपजे अकेलेपन का एहसास तब तक नहीं होता जब तक उसकी अपनी बेटी और पत्नी चले नहीं जाते । जीवन का एक सच ये भी है दर्द नितांत अपना होता है । जीवन उत्सव में अपनों की विदाई की वेला ऐसा यथार्थ है जो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को तोड़ देती है ।

सौन्दर्य स्वरुपा राजलक्ष्मी और स्थापित रुढबद्ध सौन्दर्य प्रतिमानो के हिसाब से बदसूरत कलाकार की कहानी गाथा "अजन्ता का कलाकार" कहानी कहती है की कितने सचो में एक कुरुप सच ये भी है कि प्रेम भी शक्ल और परिस्थिति देख के होता है । वरना दकियानूसी पैमानो पर कुरुप ही सही चित्रकार को ये क्यो सुनना पडता "चम्पे, मेरे सन्दूक से कुछ लेकर इसे दे दे ।" प्रेम और स्नेह के लिए ये रंग, रूप और पूँजीवादी पैमाने हमेशा ही लोगो के बीच दीवारे खीचते आये हैं और अभी भी अनवरत खींच रहे हैं ।

कलयुगी जीवन का साक्षात्कार "अब कलयुग है" में हो जाता है । समाज कितना बदल गया है, लोग उसके पक्ष में रैलिया निकाल रहे हैं जो कि अपनी अध्यापिका का बलात्कारी है । इस कलयुगी समाज में भगवान जैसी अघोषित सत्ताओं की भी कोई नहीं सुनने वाला है । इस पृथ्वी लोक में जीवन के सार्वभौमिक नैतिकता और मूल्यो का जो पतन हुआ है उसके दौर में भगवान को बचाने के लिए भी देवियो को आना पड़ता है । यहाँ कलयुग ऐसी जीवन सत्ता का प्रतीक बन कर आया है जो कि अंधेरे की सत्ता स्थापना करना चाहता है ।

सर्वहारा वर्ग का जीवन–चित्र स्वतंत्रता के बाद की कहानियों में बहुतायत में चित्रित हुआ है, ऐसे ही जीवन को कथ्य बनाती दो कहानियाँ हैं । पहली "यह खेल" और दूसरी है, "कलाकार रामू" । एक तो अपनी गरीबी की वजह से मौत को प्राप्त होता है । दूसरा जी तोड़ मेहनत करने के बाद भी एक सामान्य जीवन, जिसमें नमक–रोटी चल सके उसको भी नहीं पा पाता है । धंधे बदलना उसकी पसद नहीं मजबूरी है । थक हारकर वो हाथ फैलाने को मजबूर हो जाता है ।

"बाबूजी, क्षमा कीजिए, मैं आपको तफलीफ देने आया हूँ । दो हफ्ते से मैं बीमार रहा था! घर में बीवी–बच्चे सब बीमार हो गये। दवादारू कराने को ..."[8]

चित्रकार नायर ने अपनी कहानियों में भी कई प्रकार के जीवन चित्र खींचे हैं और उनमें कई रंगों का प्रयोग उनकी कलात्मक अभिवृत्ति को दिखाता है । उनकी कहानियों में जीवन के फूल भी है और शूल भी । जिसको बखूबी सजाने का काम नायर जी ने किया है । दलित–सवर्ण, स्त्री–पुरुष, बूढ़े–जवान, गरीब–अमीर, धर्म–अधर्म, शासित–शासक आदि सभी के जीवन आये हुए हैं । इनकी कहानियों में शुरुआती प्रेमचंद का आदर्शवादी जीवन दर्शन है तो वहीं "अब कलयुग है" जैसी कहानियों में यथार्थवादी जीवन दृष्टि मिल जाती है । कहानी में दलित जीवन की दुरुहता का वर्णन है तो स्त्री जीवन की कठिनाइयों का भी । गरीब, बेरोजगारों के जीवन चित्र आयें हैं तो धार्मिक जीवन की विसंगतियों को भी नायर ने स्थान दिया है ।

इस बात पर अवश्य विचार हो सकता है कि किन जीवन मूल्यों को महत्व मिला है? कई जगह उनकी आदर्शवादिता खटक सकती है पर कहानी सिर्फ यथार्थ का पत्र प्रस्तुतीकरण मात्र नहीं है । वह अभिवृत्ति में मौन परिवर्तन का निमित्त भी है और यह प्रेषणीयता नायर जी की कहानियों में विद्यमान है । केवल सत्रह कहानियों के माध्यम से जिस जीवन विविधता से चद्रशेखरन जी रु–ब–रु करातें हैं वह सराहनीय है । ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर और दक्षिण दोनों से जीवन दृश्यों को कहानियों में स्थान देकर गाधीवादी नायर ने गाँधीवादी न्याय किया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. http://dmchandrasekharannair.in/
2. स्वामी विशानन्द जी महाराजः चंद्रशेखरन नायर अभिनंदन ग्रन्थ पृ: 20.
3. डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायरः हार की जीत, पृः 28–29.
4. डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर : बहुचर्चित कहानियाँ, पृः 48.
5. डॉ. एन. चन्द्रशेखेरन नायर: हार की जीत, पृ: 31.
6. डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायरः बहुचर्चित कहानियाँ, पृः 90.
7. डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर : प्रोफेसर और रसोइया, पृ:13.
8. डॉ. चन्द्रशेखरन नायरः बहुचर्चित कहानियाँ, पृः 66.

मराठी साहित्य अकादमी प्राप्त लेखिका सोनाली नवांगुल से सीधी बात

डॉ. वर्षा सहदेव

श्री. विजयसिंह महाविद्यालय, पेठवडगाँव, कोल्हापुर

(भारत, महाराष्ट्र के सांगली जिले के बत्तीस शिराला गाँव की सोनाली नवांगुल को रीड की हड्डी में बड़ी चोट लगी और वह 9 साल की उम्र में बैलगाड़ी से गिरने के बाद लकवा ग्रस्त हो गई । 2000 में, नवांगुल कोल्हापुर शहर में स्थानांतरित हो गई उन्होंने 2007 तक विकलांग एनजीओ के हेल्पर्स ऑफ द हैंडीक्राफ्ट के साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में काम किया । सोनाली वर्तमान में एक स्वतंत्र स्तंभकार, एक टेड स्पीकर, पुस्तक अनुवादक और लेखिका के रूप में काम कर रही है । सोनाली नवांगुल जी का यह साक्षात्कार हम सभी के लिये मार्गदर्शक एवं प्रेरणादायी सिद्ध होगा ।

अनुवाद के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त (2020) लेखिका सोनाली नवांगुल ने अब तक मराठी में 7 किताबें लिखी हैं और उनमें से चार अनुवाद है। 'मध्य रात्रि नंतर चे तास', 'ड्रीम रनर', 'वर्धन रागछे' और 'वर्षा प्रेमाचा' उनकी अनुवाद कृतियाँ हैं । जबकि 'स्वच्छंद', 'जॉयस्टिक', 'एक बच्चों की किताब' और मेधा पाटकर पर एक किताब उनकी अन्य रचनाएँ हैं । नवांगुल ने कहा, "मैंने अपनी शारीरिक अक्षमता को अलग रखा और लिखना शुरू किया । मैंने कई किताबें और उपन्यास लिखे हैं । लेकिन इस उपन्यास का अनुवाद करने के बाद मुझे जो आनंद और जुड़ाव मिला, वह अलग है । अनुवाद को पूरा करने में मुझे लगभग 9 महीने लगे । मुझे साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त होने की खुशी है और मैं अपनी शारीरिक अक्षमता को छोड़कर मेरी प्रतिभा की सराहना करने के लिए साहित्य अकादमी समिति का आभार व्यक्त करना चाहती हूँ ।")

प्रश्न– सोनाली जी इंसान की जिंदगी में सकारात्मक और नकारात्मक दोनो चीजे होती है; तो आपने अपनी जिंदगी को एक नया मोड़ देने के लिए ऐसी कौन सी बात सकारात्मक ली, जो आपको यहाँ तक ले आई है?

उत्तर: सचिन कुंडलकर नाम का एक मेरा मित्र है, जो फिल्म में डिरेक्टर भी है; उसने कहा था हमारे अंदर नेगेटिव सोच भी होनी चाहिए; इसलिए मैं पॉजिटिव काम ज्यादा कर पाता हूँ । नेगेटिव सोच भी होनी चाहिए हमारे अंदर मुझे ऐसा लगता है कि अंत तक हमें किसी भी टॉपिक को छोड़ना नहीं चाहिए जो काम मुश्किलें नहीं लाए वह भी हमें पूरा करना है । हमारे फैसले पर सब मुमकिन हो सकता है और वह फैसला मैं खुद ले सकती हूँ । तो मुझे नेगेटिविटी यह चीज कुछ खराब नहीं लगती और जरूरी नहीं है कि जिसके बारे में लिखना है उसके बारे में पढ़ा जाए । कई बार ऐसा होता है कुछ अलग पढ़ते–पढ़ते भी कुछ नवीन टॉपिक मिल जाते हैं । या नेगेटिविटी जहरीली नहीं होनी चाहिए मतलब उसने ज्यादा खतरा नहीं होना चाहिए। हाँ लेकिन जिसके साथ नेगेटिविटी भरी हुई है जो इंसान 24 घंटे नेगेटिविटी सोच से जुड़ा हुआ है उससे दूर रहना ही बेहतर है ।

प्रश्न– 'ऑस्कर पिस्टोरियस' से पाठकों को कौन सी प्रेरणा मिलती है?

उत्तर : ऑस्कर पिस्टोरियस खेलते वक्त कहता है कि मैं इस खेल में पहले नंबर से जीत जाऊ यह जरूरी नहीं है । जरूरी यह है कि मैंने उस खेल में पहले से बेहतर खेला या उस खेल में क्या पहले से ज्यादा अच्छा खेल खेल सकता हूँ? मेरी हार जीत खुद से है, दूसरों से कम । पर खुद को मिलाने से वक्त सिर्फ बर्बाद होता है । आप सिर्फ खुद को देखो आप अपनी जिंदगी में कल से ज्यादा बेहतर है । कल से आज आपने जिंदगी में चार बातें ज्यादा सीखी हुई है । क्या कल थे उससे बेहतर और भी जिंदगी में हम कुछ अच्छा कर पाए है क्या? सिर्फ यह देखना चाहिए ।

प्रश्न– 'मध्यरात्रि नंतर चे तास' इस उपन्यास से लोगों को पॉजिटिव बातें ही दिमाग में लेनी चाहिए या नेगेटिव बातें भी लेनी चाहिए आपको क्या लगता है?

उत्तर : इस उपन्यास को पढ़कर मनुष्य के दिमाग ने जो सोचा वह सब जिंदगी के अंदर लेना चाहिए । बुरे वक्त पर ही इंसान बाहर निकलता है मुश्किलों से इंसान सही रास्ते पर भी आ सकता है । जैसे कि, सलमा । इस उपन्यास में एक फिरदोस नाम की लड़की है । वैसे तो आदमी तलाक देता है, औरत तलाक नहीं दे सकती । सलमा को उसका अपना पति बिल्कुल पसंद नहीं आता, तो वह उस वक्त ही वहाँ से निकल कर घर वापस आ जाती है । उनके छोटे से गाँव में यह बहुत बड़ी बात थी । ऐसे कैसे लड़की तलाक देकर घर वापस आ सकती है? तलाक देने का हक सिर्फ लड़कों को है ना? और ऐसी औरत तलाक देकर गाँव वापस आती है । अपने घर में रहती है और वह लड़की अपने पड़ोस के एक हिंदू के लड़के से प्यार करती है । एक हिंदू लड़के से प्यार करें यह बात किसी को पसंद आने वाली नहीं है । लेकिन तलाकशुदा लड़की ने हिम्मत की । मुझे ऐसा लगता है कि ऐसी छोटी–छोटी बातों से भी किसी को कुछ मिल सकता है । किसी को किस चीज में से क्या मिलता है यह हम अंदाजा नहीं लगा सकते । हर एक इंसान अलग–अलग होता है, सभी जज्बातों से जुड़े हुए होते हैं । इसलिए हम बता नहीं तथा यह अंदाजा नहीं लगा सकते किसी को क्या पसंद आएगा?

प्रश्न– उजाला देखने के लिए अंधेरे से भी गुजरना पड़ता है इसके बारे में आप क्या कहेंगी?

उत्तर : हाँ बिल्कुल सही है! एवरी क्लाउड इस ए सिल्वर लाइनिंग । बारिश फिल्म है, उस सिनेमा में एक लाइन यह थी कि जिस जगह पर जख्म होता है ना उस जगह से उजाला अलग तरीके से दिखता है क्योंकि जख्म के बीच–बीच में जो उजाला होता है उसी से कुछ अलग उजाला ऊपर आता है और वह उजाला अच्छा है या बुरा यह खुद को जानना पड़ता है, समझना पड़ता है और इंसान के पास हमेशा के लिए अच्छा बनाने की आदत होनी चाहिए ।

प्रश्न– अपनी जिंदगी में एक रोल मॉडल होना चाहिए या नहीं आपको क्या लगता है?

उत्तर : क्या कह सकते हैं आप इस बात पर ऐसा कुछ भी नहीं है यह सब एक पुस्तक की बात है। लेकिन हाँ! कहने की बात हो तो एक रोल मॉडल होना चाहिए। क्योंकि जिंदगी में रोल मॉडल है तो किसी तरह से अच्छा भी नहीं हो रहा तो भी कोई फर्क नही पडेगा । मेरे लिए वह इंसान रोल मॉडेल है, जो सभी के लिये आदर्श है; उनका नाम है राष्ट्रपति अब्दुल कलाम । लेकिन हेयर स्टाइल के मामले में वे मेरे लिए आदर्श नहीं हो सकते; मुझे माधुरी दीक्षित की हेयर स्टाइल पसंद आ जाएगी । भाषा की बात हो तो मुझे बाद में नसरुद्दीन शाह पसंद आ जाए । स्मिता पाटिल भी मुझे कुछ हद तक पसंद आ जाए। इसलिये कोई एक रोल मॉडेल मेरे लिये नही ।

प्रश्न– इंसान की पसंद ना पसंद हमेशा के लिए एक नहीं रह सकती आप इस बारे में क्या कहना चाहेंगी?

उत्तर : कुछ बातें होती है कुछ जिंदगी के तत्व भी होते हैं जो कभी बदल नहीं सकते । वे तत्व बदलने की नौबत ही नहीं आनी चाहिए । आज्ञाकारी लोगों के बारे में अपने अंदर उनके लिए इज्जत होनी चाहिए, सम्मान होना चाहिए । सच बोलना यह भी बात बदलना बिल्कुल भी नहीं चाहिए । बस कुछ बातें हैं जो बदलनी नहीं चाहिए; लेकिन सच बात किस तरह से इसके सामने बोलना चाहिए इस बारे में अपना खुद का अनुभव उसकी भाषा यह सब बातें धीरे–धीरे अच्छी होती जानी चाहिए ।

प्रश्न– उपन्यास का अनुवाद करते समय आपके सामने कौन सी चुनौतियाँ आई थी?

उत्तर: चुनौतियाँ मतलब वह उपन्यास मूल तमिल भाषा में लिखित है । तमिल से अंग्रेजी में अनुवादित हुआ तो उसको लिखने के लिए मैंने अंग्रेजी भाषा से उसको मराठी में अनुदित की है । इसमें बहुत सी बाते थी। जैसे– कजन माने फूफी का लड़का है या मामू का लड़का है या वह कौन है? यह समझना एक समस्या थी । उसमें नाम भी ऐसे थे कि जल्दी से समझ ही नहीं आते थे; मुस्लिम

फैमिली थी और उसमें ज्यादातर मुस्लिम लोग ही रहने वाले थे । एक छोटा सा गाँव था; लेकिन वहाँ का माहौल कुछ अजीब सा था । तब मुझे तमिल के रीति–रिवाज पता नहीं थे । आज मुझे रसोई की कहानियों से अलग–अलग तरह के व्यंजन के विषय में पता है । तब मुझे इसमें मुझे थोड़ी तकलीफ हुई । मैंने एक बात भी नोटिस की कि मुस्लिम धर्म में अजान देते हैं मेरे फ्रेंड्स भी मुस्लिम धर्म के हैं लेकिन मुझे उनके धर्म के बारे में कुछ पता ही नहीं है । इस बात से मुझे अच्छा महसूस नहीं हुआ, मुझे खुद पर शर्म आ रही थी कि हम जिनके साथ हमेशा उठते–बैठते हैं जिनके साथ अधिकांशतः रहते हैं, उनके बारे पता उनके मजहब के बारे में हमें कुछ भी नहीं पता । क्या हमें कुछ जानने की जरूरत ही नहीं है? तब मैंने तय कर लिया कि मैं भी उनके धर्म के बारे में जानूँगी, मुझे भी सब पता होना चाहिए । इस बार ईद पर जो खीर बनाई थी वह मैंने अपने मुस्लीम दोस्त से सीख थी और उससे भी कहा था की मैंने तुमसे खीर बनानी सीखी है तुम भी हमारे यहाँ गणेश चतुर्थी पर बनने वाले मोदक सीख सकते हो, आज उसे हमसे अच्छे मोदक बनाने आते हैं । इसको एक–दूसरे के मजहब के प्रति अभिव्यक्त आदर, इज़्ज़त या सम्मान कहा जा सकता है । हमारे दिल में एक–दूसरे की इज़्ज़त होनी चाहिए, बस ऐसी चुनौतियाँ मुझे इस उपन्यास को लिखते समय आई थी ।

प्रश्न– सोनाली जी आप इस अवस्था में है तो आपके रिकवर होने में कौन आपके लिए प्रेरणादायक सिद्ध हुआ?

उत्तर : सच में ऐसी कोई प्रेरणा नहीं होती यह मुझे जीवन जीते समय समझ आया । अपने को आसान लगता है 4 बड़े बड़े नाम लेकर उन्हें प्रेरणादायक बना देना । मैं तो खुद को भी प्रेरणादायक नही मानती । मुझे लोग बोलते हैं कि आप हमारी प्रेरणा है तब भी मैं इन्कार कर देती हूँ । मैंने इस पर भाषण दिया था । जब भी मैं लोगों की प्रेरणा बनी; तभी मैने नकार दिया । लोग तुम्हारी एक विशिष्ट प्रतिमा बनाएँगे और उसमें आपको बिठाएँगे और आपको ईश्वर मानेंगे या फिर मसीहा समझेंगे इन सब से बाहर निकलेंगे तो ही आपको गलत होने का मौका मिलता है । उससे आप अपनी अंदर की गलतियाँ सुधार सकते हैं । हम इंसान हैं अतः कभी न कभी गलत भी होंगे। कभी रोएँगे, कभी नाराज होंगे, कभी–कभी सीख जाएँगे, गलत बर्ताव करेंगे तो किसी पर अन्याय भी करेंगे यह सभी अपना जीवन होता है । मैंने हर बार ऐसा ही सोचा है कि मेरी कोई प्रेरणा नहीं; मुझे सभी चीजों से प्रेरित होना अच्छा लगता है और मुझे न जिंदगी जीने में बहुत अच्छा लगता है । क्योंकि जिंदगी जीने में बहुत सारे ऑप्शन्स है । मैं अपने पैर खो चुकी इसका मुझे आत्मज्ञान है या नहीं यह मैं बता नहीं पाऊंगी । आपके पास कोई चीज न हो तो फिर आपको उसकी कीमत पता चलती है । जब मेरी पहली बार पहली पावर कुर्सियाँ आई तो मेरी सहकारी मंदा और मैं बहुत खुश हुई । हम पहली बार शॉपिंग के लिए महाद्वार रोड पर गए तो लोग सिर्फ हमारी तरफ देख रहे थे और उन्होंने मेरी प्रशंसा की थी और हमने सब्जी भी खरीदी तो सब्जी वाले ने भी हमें सिखाया सब्जी कैसे ली जाती है और इंसानों की लेन–देन भी हमें इंस्पायर करती है । ऐसी अलग–अलग घटनाओं से प्रेरणा मिलती है । चाहे वह अच्छी हो या बुरी और फूलों में भी इंस्पायर करने की ताकत होती है ऐसा मुझे लगता है ।

प्रश्न– आप लिखकर यहाँ तक पहुँचेगी यह भरोसा आपको था क्या?

उत्तर : नहीं! जब आप काम करते हो तो पूरी तरह से ठीक तरीके से करना चाहिए । उस काम का मजा लेते हुए काम करना चाहिए और इससे आपको खुशी मिलती है और हम नहीं डिसाइड करते कि मेरे इस काम में सफलता प्राप्त होगी या नहीं । यह एक झूला है जो कभी–कभार ऊपर जाता है तो कभी–कभी नीचे आता है । ऐसे ही अपने कार्य में आनंद लेना चाहिए। हार–जीत तो होती रहती है बस यही जीवन है.....

प्रश्न– खुद का घर लेकर अकेले रहना आसान बात नहीं है, यह आपने कैसे किया?

उत्तर : पहले तो हम बच्चों को अपने माता–पिता ने हम पर यह विश्वास दिलाया कि हाँ, हम यह कर सकते हैं । मैं भी अपनी जिंदगी में अकेली जी सकती हूँ । मेरे माता–पिता और मैं पहले गाँव में रहते थे; तो गाँव के लोगों को समझाना थोड़ा मुश्किल होता है । पर मैंने अपने माता–पिता को यह भरोसा दिलाया कि मैं भी अपनी जिंदगी अकेली जी सकती हूँ । मैं 2007 में शिवाजी

पेट में रहने गई । सब कुछ करके देखना पड़ता था । जिंदगी है तो हमें हर तरह का संघर्ष करना पड़ता है । वहाँ पर एक प्रश्न है तो उसके उत्तर हमारे पास होने चाहिए । मुझे 10 साल हो गए घर में काम करना, रसोई में खाना पकाना इन सब बातों का अंदाज लेकर भी खुशी से रह रही हूँ ।

प्रश्न– अपने समाज में खुद को कैसे सवारे?

उत्तर: समाज वालों का क्या है जिसकी जैसी सोच। समाज में रहना है तो कभी–कभार लोगों से मीठी बातें करनी चाहिए अगर अच्छाई से ना माने तो हमें उन्हें छोड़ देना चाहिए । मेरे ऑफिस वाले नहीं पूछते कि आपके घर का काम कौन करता है? आपका खाना कौन बनाता है? यह समाज वालों के अलग–अलग प्रश्न होते हैं । समाज में ऐसे भी लोग होते हैं कि वे सोचते हैं कि हम अपना जीवन आसानी से नहीं जी सकते हैं; लेकिन मैं समाज वालों को इसका जवाब दे चुकी हूँ । मैं सब कुछ अकेली कर सकती हूँ; इस तरह मैंने स्वयं को समाज में संवारा है ।

प्रश्न– सोनाली जी आपके लिखने की शुरुआत कब से हुई?

उत्तर : लिखने की आदत तो सभी को छात्र दशा से ही लगती है । गृहपाठ पूरा करते समय, अपना अभ्यास करते समय लिखना हुआ। हमारे तहसील में मेरे पिताजी की संस्था है । हमारी एजुकेशन सोसाइटी में एक कन्या पाठशाला थी । पर मेरे पिताजी माध्यमिक शिक्षक थे । गाँव में जो पाठशाला होती है वैसे शहरों में नहीं होती । यानी कि शहरों में सब कुछ अच्छा होता है; वैसे अपने गाँव की पाठशाला में नहीं होता । मुझे खुद को एक महीने तक यह अनुभव था की कपड़े गीले होने के बाद कई लड़कियाँ मुझे चिढ़ाने लगी और मेरी खुद की इतनी तैयारी भी नहीं थी । मेरे माता–पिता को यह बात पता नहीं थी ।

अब आयुक्तालय, मंत्रालय और कहीं–कहीं पाँच सरकारी लेवेल तक जो पत्र व्यवहार चलता है तो वह मैं अच्छी तरह से लिख देती हूँ । मैंने इंग्लिश सब्जेक्ट में ग्रेजुएशन किया है । 7 साल मैंने सोशल वर्क का काम किया हुआ है । बाद में मैंने 2007 को स्वतंत्र रहने का फैसला किया । वह मेरी अंधेरे में छलांग थी । वास्तविक रूप में मैंने 2008 से लिखना प्रारम्भ किया । मैं अरुणा धोने की किताबें पढ़ती हूँ इसलिए मुझे लिखना ही पॉसिबल है ऐसे लगा ।

प्रश्न– 'मध्य रात्रि नंतर चे तास' यह उपन्यास स्त्री प्रधान उपन्यास है?

उत्तर : यह उपन्यास औरतों का ही उपन्यास है ऐसा नहीं। उसमें औरत एक मध्यवर्ती भूमिका में दिखाई देती है । इस उपन्यास में 30–40 अलग–अलग महिलाएँ हैं; 15–20 अलग–अलग पुरुष है । यह उपन्यास कभी राबिया का होता है, तो कभी जोहरा का होता है और कभी–कभी किसी और का होता है पर वह महिलाओं का ही उपन्यास है ऐसे नहीं । उसमें पुरुष भी है । इस तरह एक–दूसरे के सहयोग से दुनिया चलती है ।

प्रश्न– आप ने अब तक जो किताबें लिखी है उनमें से आपकी पसंदीदा किताब कौन सी है?

उत्तर : यह कहना तो बहुत मुश्किल है मेरे बारे में क्योंकि मुझे कौन सी किताब पसंद है, मुझे तो हर किताब में सब कुछ अलग–अलग तरह से पसंद है । दूसरी बात ऐसी है कि हर बार मुझे लगता है कि पूरानी चीजों को एक–एक करके चार्ज कर पीछे छोड़ना चाहिए; क्योंकि उनमें कुछ तो खुद की गलतियाँ दिखाई देती है । खुद को लगता है कि इसमें खुद ज्यादा अच्छा करना आया होता तो और आपकी जो पूराने काम देखें उससे खुद को कॉन्फिडेंस भी आता है । वैसे भी आप खुद कितनी बार गलतियाँ करते हैं वह आपको पता होता है पर उस गलती पर उसके आगे का काम और ज्यादा अच्छा होता है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि कौन सी किताब अच्छी है, सभी किताबें अच्छी लगती है मेरी मुझे...

प्रश्न– समाज से आपको कैसे अनुभव मिले मतलब अच्छे बुरे इसके बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर : मुझे बुरे अनुभव तो वैसे भी बहुत है जब मैं मार्केट में जाती हूँ तो उसी जगह की महिलाएँ, अपने बच्चों को बोलकर उनको गाली देने लगती थी कि देखो कितनी छोटी औरत चल रही है, और वह भी देखो चेयर पर बैठी हुई, उस औरत को भी देखो कैसी है? यह बोलकर हँसना चिढ़ाना आदि । इसे बहुत कुछ अनुभव ही कहेंगे । मुझे किसी के द्वारा कैसी हो तुम? यह सवाल पूछना अच्छा नहीं लगता । क्योंकि मैं बीमार नहीं हूँ ।

प्रश्न– सोनाली जी आपके जीवन में कौन से लेखकों ने आपको प्रभावित किया?

उत्तर : हमारी जिंदगी में प्रभावित करने वाले लोग बदलते रहते हैं; मुझे गौरी देशपांडे जी अच्छी लगती है । और मेघना पेठे, लक्ष्मी बाई आदि अच्छे लगते हैं । सरिता अलवर उनकी माँ की पुस्तक अच्छी लगती है । जागतिक सिनेमा देखने के लिए मेरे मित्र कहते हैं । अभिजीत, मंदा इस पर चर्चा करते हैं; इन फिल्मों को देखकर ऐश्वर्या खेड़कर उन्होंने विजापुर डायरी का अनुवाद किया है । जों डायरी नक्सलवादी पर है । जो मुझे पढ़कर अच्छी लगी । कविता महाजन की शिक्षाएँ अच्छी लगती है । सुरेश भट, अरुण कोलटकर, दिलीप चित्रे इन को भी पढ़ना चाहिए । अनुराधा पाटील, कविता महाजन आदि है आप एक कक्षा में नहीं रह सकते आगे की कक्षा में जाना पड़ता है ।

प्रश्न– आज की युवा पीढ़ी के बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर : हर पीढ़ी के इंसान अच्छे ही है; आज की पीढ़ी साहसी, तकनीकी है । जल्द से कोई भी बात कर लेती है । आज की पीढ़ी शोध कार्य में भी आगे है। यह दुनिया को मोहित करने वाली है। साहस से बोलने वाली और झटपट अनुकरण कर लेती है, ऐसी आज की पीढ़ी है । सोनाली जी आपने अपना कीमती समय हमे दिया, इसलिए आपके तह दिल से आभार! धन्यवाद!!!

-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-

साहित्याकाश

सुरेशचन्द्र शुक्ल शरद आलोक जी से साक्षात्कार

डॉ. रेखा.जी

सहायक प्राध्यापक

लॉयला कॉलेज (ऑटोनोमस)

चेन्नई –600034

ई मेल –sagarrekhasps1984@gmail.Com

Whatsapp -9445600456

प्रश्न.1 सर, प्रवासी साहित्य की कौन सी विशेषताएँ रही हैं?

उत्तर– प्रवासी साहित्य वह साहित्य है जिसे प्रवासी लिखते हैं । प्रवासी साहित्य की अपनी विशेषता है । अन्य विमर्शों की तरह प्रवासी साहित्य भी भारतीय भाषाओं के साहित्य में स्थान बनाने में सफल हो रहा है।जैसे नए विमर्शों में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किसान विमर्श आदि ने अपना एक स्थान बनाया और समय के साथ–साथ यह प्रासंगिक और प्रायोगिक बन गया ।

1. पहली तरह के प्रवासी वे हैं जो फिजी, मॉरीशस, त्रिनिडाड, गुआना, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में गये या ले जाए गए । वे लोग गिरमिटिया, श्रमिक अथवा कृषक बनकर अनेक देशों में गये और वही बस गये। वे अनेक पीढ़ियों से वहाँ रह रहे हैं और कुछ वर्षों में या अवकाश प्राप्त करने के बाद वापस देश लौट आये ।

2. दूसरे तरह के लोग जो श्रमिक–कारीगर के रूप में विदेशों में काम करने गये।जैसे मध्य पूर्व एशिया आदि में कुछ वर्षों तक काम करने के बाद या अवकाश प्राप्त करने के बाद स्वदेश लौट आये ।

3. तीसरे वे जो अपना जीवन बेहतर बनाने हेतु पढ़ने के लिए गए व काम करने गए और फिर वही बस गये ।

मुझे इसी तीसरी श्रेणी में रखा जा सकता है । मेरा मानना है प्रवासी साहित्य को किसी एक मानदण्ड में नहीं ढाला जा सकता । प्रवासी साहित्य व्यापक है । कमलेश्वर ने प्रवासी साहित्य पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि 'रचना अपने मानदंड को खुद तय करती है। प्रवासी रचनाओं के भी मानदंड तय होंगे ।

प्रश्न 2. सर, साहित्य सृजन में आपकी रुचि कैसे उत्पन्न हुई? किस साहित्यकार से आपको लिखने की प्रेरणा मिली?

उत्तर– बचपन में मेरे आसपास के वातावरण ने मुझे साहित्य से जोड़ा । शुरुआत घर से हुई । घर पर पिताजी रेडियो सुनते थे, रोज अखबार पढ़ते और अपने पास बैठाकर मुझसे भी अखबार पढ़वाते थे । उस समय आकाशवाणी में देहाती रेडियो पर रमई काका की हास्य–व्यंग्य नाटिका लोक भाषा अवधी में प्रस्तुत की जाती थी और रात में हवामहल कार्यक्रम में एक एकांकी प्रस्तुत की जाती थी । जिसका प्रसारण शायद रात पौने नौ बजे रेडियो पर होता था । दोनों कार्यक्रम रोचक होते थे । माँ रोज रामायण पढ़ती थीं और मुझे भी पढ़ने के लिए प्रेरित करती थीं । अतः माँ की आज्ञा मानकर मैं प्रायः रामायण पढ़ने लगा । इसके साथ नगर महापालिका पाठशाला ऐशबाग लखनऊ से मैंने पाँचवी कक्षा की शिक्षा प्राप्त की थी, जहाँ हमारे अध्यापक अंत्याक्षरी की प्रतियोगिता कराते थे । इस पाठशाला में अध्यापक नन्हा महाराज और राम विलास जी का आज भी स्मरण है जो बहुत प्रोत्साहित करते थे ।

वहाँ मेरे भीतर जाने–अनजाने साहित्य के बीज पड़ गए थे । सन् 1969 में मेरी पहली कविता प्रकाशित हुई। रामचरित मानस और पाठ्यक्रम की कविताओं और कहानियों को जब पढ़ता था तो इच्छा होती थी कि मैं भी कुछ लिखूँ। लखनऊ नगर के उस समय के प्रतिष्ठित समाचार पत्र 'स्वतन्त्र भारत' और 'आज' पढ़कर समाज की बहुत जानकारी मिलने लगी। जिसमें हर सप्ताह साहित्य का परिशिष्ट होता था । अखबार पढ़कर से लिखने की इच्छा और प्रबल हुई ।

मुझे लिखने के लिए आस–पास के समाज ने प्रेरित किया। जब अपने मोहल्ले के कार्यक्रम में मैं कोई कविता सुनाता था तो वे मेरे पिताजी श्री बृजमोहन लाल शुक्ल व माँ श्रीमती किसोरी देवी से मेरी तारीफ़ करते थे। इस तरह पिताजी मुझे प्रोत्साहित करते थे। स्वतन्त्र भारत, बोधगीत तथा श्रमांचल में मेरी कवितायें छपने लगी थीं।

प्रश्न 3. सर, आपकी पहली प्रवासी रचना क्या थी और कब प्रकाशित हुई थी?

उत्तर– सन् 1980 से ही मेरी पहली प्रवासी रचना नार्वे से प्रकाशित पहली हिन्दी पत्रिका 'परिचय' में प्रकाशित हुई थी । नार्वे में मैंने पहली कविता बर्फ पर लिखी थी जो रजनी काव्य संग्रह में घन (हिमपात के गहन) शीर्षक से प्रकाशित हुई ।

प्रश्न 4. सर, साहित्य की किस विधा में आपकी रुचि सर्वाधिक है?

उत्तर– अधिकांश लेखकों ने अपना लेखन कविता से शुरू किया था । वैसे ही मैं भी उसका अपवाद नहीं था । बहुत से लेखकों की तरह मेरी भी पहली पुस्तक कविता की प्रकाशित हुई ।

प्रश्न 5. सर, आपका रचना संसार बड़ा व्यापक है इसमें कौन सी रचना आपको प्रिय लगी?

उत्तर– मुझे लगता है आम तौर पर अधिकाँश लेखकों को अपनी सभी रचनायें कमोवेश पसंद आते हैं । पाठकों द्वारा जो मेरे काव्य संग्रह अधिक पसंद किये गए हैं उनमें रजनी, नंगे पांवों का सुख, नीड में फंसे पंख, गंगा से ग्लोमा तक और लॉकडाउन है ।

मेरे काव्य संग्रह 'गंगा से ग्लोमा तक' को मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी से अखिल भारतीय भवानी प्रसाद मिश्र काव्य पुरस्कार से सम्मानित किया गया था । सच पूछिये मुझे अपनी रचनायें बहुत पसंद नहीं हैं । मुझे लगता है मैंने अभी तक अच्छा साहित्य नहीं लिखा है, हो सकता है कि आने वाले समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ । जब मेरे हाथों अच्छे साहित्य का सृजन होगा क्योंकि मुझे लगता है कि मैंने अभी तक उत्कृष्ट साहित्य सृजन नहीं लिखा है ।

प्रश्न 6. सर, आप अपनी रचनाओं में विषय–वस्तु कैसे चुनते हैं?

उत्तर– अपनी रचनाओं में मैं विषय वस्तु कैसे चुनता हूँ? उसका उत्तर देने के पहले उस समाज और देश के बारे में कुछ आधारभूत महत्वपूर्ण सूचनायें साझा करना चाहता हूँ क्योंकि इनका मेरी रचना प्रक्रिया में असर पड़ा है। भारतीय संस्कृति के इतिहास को लिखने का मुख्य कार्य विद्वान कवियों ने किया है।वैदिक युग का सांस्कृतिक रूप रेखा ऋगवेद में सुरक्षित है। समय–समय पर सैकड़ों वर्षों से हमारे देश भारत में विदेशियों का आगमन होता रहा।वे कभी पर्यटन, शिक्षा प्राप्त करने, व्यापार करने आये और यही अच्छा लगने पर बस गया। विदेश से आये लोग अपने साथ स्थापत्यकला, भाषा और उद्योगिक उन्नति में सहयोगी बने। यहाँ की संस्कृति को विभिन्न संस्कृतियों से धनी और रंग–बिरंगा बना दिया। भारत में विविधता और अनेकता में एकता का उदाहरण विश्व के लिए एक उदाहरण है ।

मैं दक्षिण एशिया के खूबसूरत देश और भारत के बाद दूसरे महाद्वीप यूरोप के सबसे उत्तर में बसे देश नार्वे में आकर बस गया। मूल देश भारत और नए बसे देश नार्वे में संस्कृति, सभ्यता और कौशल विकास आदि को लेकर बहुत बड़ा अंतर है। मुझे 26 वर्ष भारत को देखने और रहने का अवसर मिला और 1980 से ओस्लो, नार्वे में निवास कर रहा हूँ। अतः मुझे देश देखने का अनुभव हुआ और विदेश देखने का भी। मुझे दोनों देशों में शिक्षा प्राप्त करने और लेखन करने का अवसर भी मिला। मेरी रचना

प्रक्रिया में मेरे आस–पास के वातावरण में होने वाली घटनाओं का बहुत असर पड़ा।स्वदेश भारत में यदि कोई अच्छी घटना घटती तो बहुत प्रसन्नता होती और यदि कोई ख़राब घटना और दुर्घटना घटती तो दुःख होता। यहाँ से प्रभावित होती है मेरी रचना प्रक्रिया। मैं भारत को घर और बाहर दोनों दृष्टिकोण से देखता हूँ। उसी तरह नार्वे को भी भारतीय और नार्वेजीय दोनों दृष्टिकोण से देखता हूँ। लेखों और कहानियों में तत्कालीन और स्थायी प्रतिक्रिया स्वरूप विषय यथार्थ मेरे अनुभवों, कल्पनाओं में विचरण करते हुए एक विधा में (कविता, लेख और कहानी में) सृजित हो जाते। अनायास आये विचार भी कवितायें बनकर आईं न जाने कब आसमान के तारों की टिमटिमाहट, प्रकृति के सौंदर्य, मानवीय सरोकारों से प्रभावित होकर कब कोई विचार मन में आता और रचना का जन्म हो जाता ।

प्रश्न 7. सर, आपके प्रवासी साहित्य के पात्र वास्तविक जीवन से जुड़े होते हैं, इसका क्या राज़ है?

उत्तर– जैसा जीवन हम जीते हैं और जिस वातावरण और समाज में रहते हैं उसका हमारे ऊपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । सभी जो सामने घट रहा होता है । वह हम देखते हैं । पर जब मेरे जैसे व्यक्ति कुछ विशेष देखते हैं तो उसका प्रभाव मन में महसूस करते हैं । वहीं रचनाकार उसे लिख देता है । कलाकार उसकी पेंटिंग बनाता है। मूर्तिकार अपनी मनचाही मूर्ति में वह भाव भर देता है। कहानी लिखने के पहले मैं उस देश समाज,भूगोल की जानकारी और वर्तमान स्थिति को पढ़कर व वहाँ के लोगों से बातचीत करके सत्य की खोज का प्रयास करता हूँ। मेरी रचनाओं में पात्र पूरे वास्तविक नहीं होते पर पात्र वास्तविकता के करीब होते हैं। श्रोतों की जाँच के बिना भावना में बहकर शुरू में प्रेम कवितायें सभी लिखते हैं। पर मैं अब भावना में बहकर नहीं लिखता और अपना होने पर भी उसका पक्ष नहीं लेता बेशक कहीं मेरा उस पात्र के प्रति लगाव प्रकट भी हो जाता है पर उसे आवश्यकता से अधिक छूट नहीं देता वरना वह यथार्थ से दूर हो जायेगा। इस वास्तविकता को लिखते हुए यह ध्यान रहता है इसका प्रभाव उन्माद फैलाने, किसी की भावना को भड़काने या उकसाने में अपने पात्रों को छूट नहीं देता। रचनाकार सेतु निर्माता होता है। मैं रचना में केवल परिवर्तित कर देता हूँ ।जैसा मैंने देखा, सुना और अनुभव किया। इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। अनेक बार ऐसा होता है कि कोई दो पल के लिए आपके सामने आता है और सामने से गुजर जाता है। आप उसे धन्यवाद या आह और ओह नहीं कह पाते क्योंकि आप बाद में उसे महसूस करते हैं। जबकि पल भर का संपदन आपके मस्तिष्क में कभी–कभी बहुत समय तक रहता है। यह प्रकृति के दृश्य को भी देखकर हो सकता है। हम उस सुंदरता,आकर्षण और मुग्धता को अस्वीकार नहीं कर पाते। एक कविता में मैंने लिखा है।

'सौंदर्य को देखकर उसको नकारना
जैसे मंदिर में जाकर दीप न जलाना।'

लॉकडाउन काव्यसंग्रह में एक बालक अपनी मरी हुई माँ को जगाता है,

'भूख से प्लेटफार्म पर, मरी हुए माँ को
दो साल का बालक जगा रहा।
उसे लगा सरकार भी उसे,
माँ की तरह छोड़कर चली गयी।'

यह एक शब्द चित्र जिसमें बहुत ज्यादा श्लेष अलंकार की जरुरत नहीं पड़ी और पाठक को पूरी कविता पढ़ने से समझ में आ जाता है कि कब और कहाँ का दृश्य है। वास्तविकता मानवता के प्रति अधिक जिम्मेदारी से जब रचना में दिखती है तो विश्वसनीयता के साथ दूरगामी प्रभाव भी डालती है। शायद यही कारण है मेरी अधिकाँश कहानियों को पाठक एक बार पढ़ने के बाद उसका कोई न को अंश पाठक के मस्तिष्क में हमेशा के लिए एक छोटा सा स्थान बना लेता है। मेरा मानना है लेखक को

अपने प्रति ईमानदार होना चाहिए यह यथार्थ से ही संभव है।रचनाओं में वास्तविकता के साथ–साथ व्यंग्य, कला और नाटकीयता भी प्रभाव डालती है मेरी दृष्टि से यह जरुरी है।

प्रश्न 8. सर, आपकी प्रवासी हिंदी रचनाओं में भारतीयता झलकती है, इसका क्या राज़ है?

उत्तर– मेरी रचनाओं में भारतीयता झलकना स्वाभाविक है। मेरे अंदर भारतीयता भरी है क्योंकि पहला कारण कि मैंने 26 वर्ष भारत में व्यतीत किये हैं। लखनऊ में रहते हुए भारतीयता के साथ भाषाई तहजीब गंगा–जमुना है। जिसमें हिन्दी, अवधी और उर्दू का संगम है,जहाँ गालियों का स्थान नहीं है। लड़ते समय भी लखनऊ में लोक किसी को आप कहकर सम्बोधित करते हैं। चाहे किसे से विवाद क्यों न हो गया हो । मैं आजीवन नार्वे में रहूँ तो भी नार्वेजीय हो नहीं सकता और भारतीयता छोड़ नहीं सकता । मुझे भारत और नार्वे दोनों से प्यार है । भारत मेरे लिए देवकी माँ की तरह है और नार्वे यशोदा माँ की तरह है । भारतीयता होने का एक कारण यह भी है कि मैंने अपने नार्वे के प्रवास में 41 वर्षों में से 40 वर्ष नार्वे में रहकर हिन्दी और नार्वेजीय भाषा की पत्रिका का सम्पादन किया है । इस कारण दिन रात भारत मेरे अंदर रहता है ।

प्रश्न 9. सर, आपकी रचनाओं के पात्रों में सबसे प्रिय पात्र कौन सा है? क्यों?

उत्तर– मुझे लगता है कि मेरे पात्रों में अनेक कहानियों में नारी पात्र मुखर हुई है।चाहे मिट्टी के खिलौने की पात्र उर्मिला हो, विषमतायें की महुआ, अधूरा सफर की शबाना, पुण्यांकन का जमील, आसमान छोटा है की कारी, दुनिया छोटी है कि टीना, लाहौर छूटा अब दिल्ली न छूटे की दादी कौशल्या,आदर्श एक ढिंढोरा का गोपाल और वापसी का राम शरण सभी पात्र मुझे प्रिय हैं क्योंकि ये अभी भी मेरे मस्तिष्क में बसे हुए हैं। अतः एक पात्र दूसरे पात्र से अलग भी है और जुड़ा भी है। कभी लगता है कि एक पात्र अलग–अलग पात्रों के रूप में मेरा पीछा कर रहा है और नयी रचनाओं में आने की मानो जिद कर रहा है। कौन–सा पात्र ज्यादा प्रिय है यह कहना मुश्किल है। अतः जिनका मैंने यहाँ कहानियों में जिक्र किया है ये सभी पात्र किसी न किसी रूप में मेरे प्रिय पात्र हैं।

प्रश्न 10. सर, आपकी रचना प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले मूल तत्व क्या हैं?

उत्तर– मेरी रचनाओं के सृजन में पहले से निर्धारित कोई निश्चित तत्व नहीं होता । व्यक्ति और समाज में लेखक को संघर्ष और सृजन करते हुए रचनाओं में अनेक तत्वों का समावेश होता चला जाता है विषय और काल के अनुसार । मेरी रचना प्रक्रिया के केंद्र में व्यक्ति और समाज रहता है । अतः व्यक्ति और समाज को प्रभावित करने वाले सारे तत्व हैं जो हमारे जीवन पद्धति, राजनीति, समाज और देश के खंडकाल में विराजमान हैं, मेरी रचनाओं में देखे जा सकते हैं ।

प्रश्न 11. सर, आपकी रचनाओं में प्रवासी जीवन के विविध आयामों में सामाजिक आयामों पर आपके क्या विचार हैं?

उत्तर– प्रवासी जीवन के वही आयाम हैं जो मानवीय जीवन के आयाम हैं । नये देश में बसने से भौगोलिक दूरी और सांस्कृतिक भिन्नता का होना जुड़ जाता है । मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ सौ देशों के लोग रहते हैं । जबकि मेरी मातृभूमि यथार्थ स्वदेश में भी भिन्नता है । स्वदेश में सामंजस्य के सामूहिक प्रयास नहीं किये गए और सभी को उसमें नहीं जोड़ा जा सका।इसीलिए कोविड–19 महामारी के समय में स्वदेश की जनता को जोड़ा नहीं जा सका क्योंकि राजनैतिक एकता और समंजस्यता का अभाव रहा।इसी महामारी के समय में 56 लाख की आबादी वाला देश नार्वे हमेशा की तरह पूरी दुनिया में अपने मालवाहक जहाजों से सामान ढोता रहा। दुनिया में सबसे ज्यादा युवकों की आबादी वाले देश भारत में युवाओं को इस महामारी और लॉकडाउन में कौशल विकास न सिखाया जा सका जो मेरी दृष्टि में सबसे बेहतर मौका था। पर प्रशासन और राजनैतिज्ञों की अनुभव की कमी के कारण इन्तजार करते रहे। अतः सामूहिक रूप से सभी को प्रयासों में जोड़ा नहीं जा सका, यह मेरा आकलन है, हो सकता है मैं गलत होऊँ ।

आगामी समय में आज लिखे जा रहे यथार्थ और सामयिक प्रवासी साहित्य के आयामों का मूल्यांकन हो सकेगा। हमारे साहित्य में इस कोरोना काल या आपातकाल में कैसे उपाय किये जायें उपलब्ध नहीं था और हम अनभिज्ञ रहे। जिन देशों में सरकारी स्वास्थ व्यवस्था और आपातकाल के समय में प्रबंधन को उनके और दूसरों के अनुभवों को अपने देश की स्थिति और व्यवस्था के साथ जोड़कर प्रयास किये गए वे सफल रहे और उन्हें आर्थिक घाटा का भी उतना नहीं हुआ जितना भारत और गरीब देशों में । मेरे साहित्य में इसका वर्णन है ।

प्रवासी साहित्य के द्वारा हम जानेंगे कि कैसे महामारी के समय में हमारे प्रयास हो सकते थे।नार्वे को सौ साल पहले महामारी से जो अनुभव हुआ उससे यहाँ सभी को कौशल विकास, स्वैक्षिक श्रमदान और सामूहिक जिम्मेदारी और ईमानदार को कड़े परिश्रम को जोड़ा गया। नार्वे में आज भी बालवाड़ी (किंडरगार्डन), स्कूल और कॉलेज में शिक्षा में कौशल विकास,अपने देश के मौसम, प्राकृतिक साधन का संरक्षण करना और उपयोग करना सिखाया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रतिकूल मौसम, विपरीत परिस्थिति में अपने व्यवसाय को आनन्द से कैसे जोड़ा यह मेरे प्रवासी साहित्य में जान सकते हैं।यह कोई थ्योरी नहीं है संघर्ष के साथ सामूहिक प्रयास है जिसमें सभी को समान रूप से जुड़ना होता है ।

प्रश्न 12. सर, आपकी रचनाओं में प्रवासी जीवन के विविध आयामों में आर्थिक आयामों पर आपके क्या विचार हैं?

उत्तर– जीवन के विविध आयामों में आर्थिक आयामों का बहुत बड़ा योगदान होता है अतः मैंने अपनी रचनाओं में मैंने निम्नलिखित सवाल उठाये हैं और कहीं न कहीं वर्णन भी किया है जो निम्नलिखित हैं । इन सभी का सम्बन्ध आर्थिक आयामों से है, प्रवासी साहित्यकार जहाँ रहता है उसका प्रभाव पड़ता है, सभी गाँवों में स्कूल, सभी के लिए सामान शिक्षा और ऐच्छिक श्रमदान के अवसर होने चाहिए। हर गाँव में स्कूल, बाजार और धार्मिक स्थल एक निश्चित स्थान पर होने चाहिए। असमानता,अन्याय और अपराध के लिए शुन्य जगह होनी चाहिए। राष्ट्र की सम्पति और प्राकृतिक साधन हमेशा राष्ट्र के पास होना चाहिए। हर क्षेत्र में संगठित होने चहिए ।

प्रश्न 13. सर, आपकी रचनाओं में प्रवासी जीवन के विविध आयामों में राजनैतिक आयामों पर आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर– देश में प्रजातंत्र व्यवस्था में राजनीति की शिक्षा और दैनिक जीवन में प्रयोग को बालवाड़ी, स्कूल कॉलेज से पूरी तरह जोड़ना चाहिए । मैं पहले भी कह चुका हूँ कि असमानता, अन्याय और अपराध के लिए शून्य जगह होनी चाहिये । राष्ट्र की सम्पति और प्राकृतिक साधन हमेशा राष्ट्र के पास होना चाहिए। हर क्षेत्र में सभी को अनिवार्य रूप से संगठित होना चाहिये। समाज और देश को आर्थिक फायदा होने पर सभी नागरिकों को उसका फायदा होना चाहिए, राष्ट्र की संपत्ति बढ़ती है। जो आपातकाल और देश की बेहतरी में अकाम आ सके।आर्थिक असमानता नहीं बढ़नी चाहिये ।

प्रश्न 14. सर, आपकी रचनाओं में प्रवासी जीवन के विविध आयामों में धार्मिक आयामों पर आपके क्या विचार हैं?

उत्तर– धर्म एक निजी संस्कृति और जीवन पद्यति से जुड़ा होता है । मैंने रामचरितमानस से रामजन्म और गुरुवंदना का नार्वेजीय भाषा में अनुवाद किया है । इसी के साथ हनुमान चालीसा का भी नार्वेजीय भाषा में अनुवाद किया है । गुरु ग्रंथ साहेब के कुछ शब्दों का अनुवाद भी किया है । कबीरदास, रैदास, सूरदास के पदों का भी अनुवाद हिन्दी से नार्वेजीय भाषा में किया है । मेरी रचनाओं में पात्र के अनुसार उसके परिवेश को व्यक्त करने के लिए कभी–कभी उसके धर्म का जिक्र आया है पर हमेशा नहीं । मदरसे के पीछे कहानी में जो अफगानिस्तान के परिशिष्ट पर लिखी गयी है।उस कहानी में धर्मान्ध और कट्टरता के बीच पात्रों के अंतर्द्वंद्व और संघर्ष की व्याख्या की गयी है।जो मेरी चर्चित कहानियों में सुमार की जाती है।जिसे मैंने 20 वर्ष पूर्व लिखा था। आपने अनेक कहानियाँ पढ़ी होंगी उसका जिक्र कर सकती हैं ।

प्रश्न 16. सर, प्रवासी हिंदी साहित्य की समृद्धि के लिए आपके क्या विचार हैं?

उत्तर– प्रवासी साहित्यकार जिस देश और समाज में रहता है उसे उस समाज में सर्वाधिक सक्रिय होना चाहिये। संवाद और बैठकों में सम्मिलित होने के साथ–साथ वहाँ का साहित्य, इतिहास और दर्शन पढ़ना चाहिये। प्रवासी साहित्य को सभी भाषाओं के प्रवासी साहित्य में जगह मिलनी चाहिये। प्रवासी साहित्य अपनी भाषा में है और प्रायोगिक अपनी।धार्मिक प्रवासी साहित्य को पढ़ने का मैं अनुमोदन नहीं करता। पहले से ही हम अपने–अपने धर्म और संस्कृति के प्रति जागरूक हैं। प्रवासी साहित्यकार को उस देश के साहित्य को भी अपनी भाषा में अनुवाद करना चाहिए ताकि हम अपनी भाषा में विदेशी साहित्य पढ़ सकें।तकनीकी और विज्ञान के विषयों पर तर्क और श्रोतों के अध्ययन के बाद उस पर प्रवासी साहित्यकार को रचनायें साहित्य लिखने और अनुवाद करने की बड़ी जरुरत मैं महसूस करता हूँ।

प्रश्न 17. सर, लेखन कार्य के अलावा आपकी अन्य अभिरुचियाँ क्या हैं?

उत्तर– मुझे अपनी लघु फिल्मों में अभिनय करना पसंद है इसीलिए मैंने अपनी दो टेली फिल्में तलाश (1996) और रायसेन तिल कनाडा (कनाडा की सैर–1998) तथा दिल्ली दूरदर्शन की फिल्म आठवाँ चाचा में भी सन् 1986 में अभिनय किया था । मैंने नार्वेजीय टी.वी कार्यक्रम मोची जाहिद अली की गली में भी अभिनय किया है। मैं नार्वे में सामाजिक और राजनैतिक रूप से भी काफी सक्रिय हूँ।नार्वे के लेखक समुदाय में भी मेरा उठना–बैठना है ।

प्रश्न 18. सर, उदीयमान लेखकों के लिए आप क्या सन्देश देना चाहते हैं?

उत्तर– किसी भी विचारधारा के अंधभक्त और कट्टर नहीं बनें । लोकतंत्र और राजनीतिक व्यवस्थाओं का साहित्य पढ़ें और समझें । आज आप ज्ञान के आदान–प्रदान के लिए वैश्विक मंचों से जुड़ सकते हैं । देशप्रेम और मानवतावादी बनें न की राष्ट्रवादी । पहले वैश्विक साहित्य पढ़ें और फिर भारतीय बड़े वैश्विक लेखकों को भी पढ़िए । धार्मिक साहित्य की मैं वकालत नहीं करता वह तो आप अपने घर में पढ़ सकते हैं । हम किस्मत वाले हैं कि महात्मा गाँधी भारत के थे । उन्हें पढ़ने और उसे प्रायोग में लाने से कभी आप बेरोजगार नहीं रहेंगे बल्कि आप आत्मनिर्भर बनेंगे । हर व्यक्ति को चाहे लेखक हो या कलाकार उसे कौशल विकास से जुड़ना बहुत जरूरी है । देश की समस्या को दूर करने के लिए जिस देश में रहते हैं उस देश की राजनीति से भी जुड़ना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए ताकि आप स्वतन्त्र निर्णय और आकलन कर सकें । मेरे विचार से साहित्य लेखन और राजनीति एक सिक्के के दो पहलू होते हैं जहाँ मानवता, समानता और न्याय केंद्र में रहते हैं ।

प्रश्न 19. सर, हिंदी साहित्य के पाठकों की संख्या के विकास के लिए आप क्या सुझाव देना चाहते हैं?

उत्तर– सोशल मीडिया के कारण हिन्दी के पाठकों की संख्या बहुत बड़ी है।लेखकों की पुस्तकों के पाठकों की संख्या बढ़ने के लिए लेखकों को भी बहुत कुछ करना होगा । पुस्तकालयों तक पाठक पहुँच सकें उसके लिए पुस्तकालयों का विकास और उनकी संख्या बढ़ाने की जरुरत है।लेखक अधिक अध्ययन करें जल्दबाजी में रचनाएँ न लिखें। सामाजिक मीडिया में जो साहित्य की भरमार हैं वह सब साहित्य नहीं है। जिनकी कोई विचारधारा नहीं है उसमें परिपक्व नहीं है वह उस पर सूक्तियाँ लिख रहे हैं । सूक्तियाँ आपके तपस्या करने के बाद आपके अनुभवों से निकलती हैं । जबकि बहुत से लोग रोज सूक्तियाँ लिख रहे हैं, इससे लेखक बचे । तभी साहित्य विश्वसनीय होगा और पाठकों का आकर्षण बढ़ेगा ।

प्रश्न 20. सर, नार्वे के प्रवासी हिंदी साहित्य की क्या विशेषताएँ हैं?

उत्तर– नार्वे में प्रवासी साहित्य नया–नया है । लेखकों ने जैसा देखा, पाया उसे लिखा है । नार्वे में प्रवासी साहित्य 1980 से लिखा जा रहा है । हालांकि यहाँ 1978 से एक भारतीय पत्रिका 'परिचय' छपना शुरू हुई थी जो हिन्दी और पंजाबी में थी। मैं भी सन् 1980 से 1985 तक इससे जुड़ा रहा पर उसमें लेख और समाचार थे,जो पहले भारतीय समाचार पत्रों में छप चुके थे। यहाँ नार्वे में लिखे जा रहे साहित्य में यहाँ के परिवेश का वर्णन मिलता है। नार्वे में प्रवासी साहित्य में अभी नास्टेल्जिया का प्रभाव है

पर यहाँ के परिवेश पर भी रचनाएं लिखी जा रही हैं। रचनाओं में स्थानीय शब्द, त्योहार, गतिविधियों के स्थानीय शब्द मिलते हैं । जो लोग नार्वेजीय भाषा में लिखते हैं उनका दायरा थोड़ा उदार है ।

मेरे प्रवासी साहित्य में यहाँ की संस्कृति, भारतीय संस्कृतिव दोनों संस्कृतितियों से टकराव, द्वंद्व आदि मिलता है । भारत से प्रेम उसकी यादों से जुडी ज्यादातर रचनायें लिखी जा रही हैं । अधिकतर लोग भारत में हो रहे गतिविधियों से प्रभावित होकर लिख रहे हैं क्योंकि मेरा मानना है कि विदेश आकर व्यक्ति स्वदेश से अधिक प्यार करने लगता है ।

प्रश्न 21. सर, नार्वे में हिंदी का क्या बोल–बाला है?

उत्तर– नार्वे में जब भारतीय मिलते हैं भारतीय दूतावास, मंदिर, गुरूद्वारे या मस्जिदों में तो वह अपनी भाषा हिन्दी में बात करना पसंद करते हैं।बेशक ये लोग अलग–अलग प्रदेशों से होते हैं पर बात करने वाले भारतीय एकभाषी होते हैं तो वह उसी भाषा में बात करना पसंद करते हैं। नार्वे हिन्दी प्रवासी भारतीयों की संपर्क भाषा है ।

प्रश्न 22. सर, नार्वे के लोग हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के प्रति किस हद तक समर्पित हैं?

उत्तर– मैं दिन रात सोते–जागते हिन्दी और भारत देश के बारे में सोचता हूँ । वहाँ की स्थितियों और समस्याओं के समाधान को ढूढ़ने के लिए यहाँ सम्बंधित विदेशी साहित्य पढ़ता हूँ । यहाँ विद्वानों पर उसकी चर्चा करके अपने विचारों को परिपक्व बनाता हूँ, श्रोतों को जानता हूँ और परखता हूँ। विदेशों में रहने वाले कुछ भारतीयों से बात करके पता चलता है कि अभी भी काफी लोग बहुत साल तक विदेश में रहने के बाद भी इंटीग्रेट नहीं हुए हैं । भारत में सम्पादकों और लेखक मित्रों से भी बातचीत करता हूँ अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिए नहीं वरन उनकी राय जानने के लिए जिससे बहुत सीखने को मिलता है। मरते दम तक हिन्दी साहित्य से विलग होना संभव नहीं हैं। बेशक मैं यहाँ की भाषा का रोज दो अखबार पढता हूँ और भारत के अखबारों में दि हिन्दू पढ़ता हूँ जो अंग्रेजी का अखबार है ।

प्रश्न 23. सर, नार्वे में रहते हुए आपको अपने वतन की याद आना स्वाभाविक ही है, इस पर अपने विचार बताइए ।

उत्तर– 'वतन से दूर', हमारे स्वर्ग सा भारत, लो स्वदेश से आयी चिट्ठी, देश बदलने से आदि अनेक कवितायें रचनाएँ वतन की यादों से जुडी हैं। वापसी,अधूरा सफर और विसर्जन के पहले कहानियाँ इसका उपयुक्त उदाहरण हैं। मैं पहले भी कह चुका हूँ कि चाहे मैं नार्वे में आजीवन रहूँ पर मैं अपनी भारतीयता छोड़ नहीं सकता और पूरा नार्वेजीय हो नहीं सकता ।

"मन और बुद्धि"

श्रीमती निलोफर अब्दुलसत्तार नाईकवाडी

मोबाइल नंबर : 7875691492

ई मेल आईडी: naikwadinilofar1985@gmail.com

सहसा एक बार,
बहस हो गई उस पार,
बुध्दि ने मन को चिढ़ाते हुए कह डाला इस बार,
ऐ मन, तु तो बड़ा चंचल है रे
ऐ मन, तु तो सदा भटकता है रे
ऐ मन, पर तुझसे बड़ा आज़
मैं बन गया हूँ देख ले ।।
मानव ने मुझे उपयोग कर,
क्या क्या मक़ाम हासिल किया है रे
तु तो लेकिन अपनी ही दुनिया कि मस्ती में खो गया है रे
इसलिए आज तक तुझको
कोई समझ ही न पाया है रे
सभी करते हैं बस मेरा ही बखान
मेरी ताकत को करते हैं सलाम
गुमसुम बैठे 'मन' ने 'बुध्दि' का घमंड देखा और
तुरंत जवाब में कह डाला
ऐ बुध्दि, मती तेरी मारी गई है,
जो मुझसे उलझने आई है
ऐ बुध्दि , तु इतनी घमंडी
मेरी वजह से ही तो बन पाई है
मेरी चंचलता ने ही तो तुझको
अहंकार से भर दिया है ।।
बस, इतनी–सी बात मानव, समझ ही न पाया है
अगर मानव मन ने
मुझे शांत रखा होता तो वो
मुझ तक जरुर पहुँच जाता और
मन की भावनाओं को समझकर
ईश्वर के क़रीब हो जाता
सत्य का मार्ग कभी न भूल पाता वो

क्या उचित है और क्या अनुचित भेद यह वो जान पाता
ये मन ही तो है जो उसे
समझाता है, लेकिन फिर भी वो
इन बातों को अनदेखा कर देता है
झटपट तुझ तक पहुँच कर
वहीं करता है, जो मेरी चंचलता ने उससे करने कहा होता है ।।
इसलिए तु मेरा मुकाबला
तेरे साथ कभी मत कर, वरना
तुझे मेरी ही इशारों पर ही तो
चलना होता है
बात मेरी मान ले,
अहंकार को छोड़ दें
इतना सुनते ही बुध्दि को आ गया गुस्सा और तमतमाया बोला,
चूप रह! तु मन
मुझे तेरी कोई जरूरत नहीं है
मानव आज बुध्दि से ही तो
संपन्न है, जीवन उसका
मुझसे परिपूर्ण है
अगर मानव मन की ओर चला जाता तो उस मानव की
हार तो निश्चित ही होती
तेरे झांसे में आकर उसने
अपना सबकुछ खो दिया तो
दूर खुद से ही हो जाता रे
'मन' ने 'बुध्दि' को सहलाते हुए कहा एक बार
तु कितना भी सोच ले
लेकिन मुझ में ही तो
ईश्वर का निवास है ।।
सुनकर बुध्दि ने कहा फिर
उचित है, तेरा यह कहना पर,
मानव के लिए तु तो है, सिर्फ एक खिलौना हे मन
सोच–विचार से अंतिम निर्णय
मुझको ही तो लेना है
कहा मानव ने समझाते हुए
'मन' और 'बुध्दि' को कि
तुम दोनों तो मुझमें ही समाएं हो
इसलिए अब दोनों के इस झगड़ों में
बेचारे मानव का जीवन तो कभी आर तो कभी पार हो जाता है ।

जमींदार

हनुमान सिंह हरदासवाली
9116555496

क्योंकि मैं एक जमींदार हूँ,
बस ऐसे ही समझ आता हूँ ।।
मौसम के अनुसार बदलना,
बदल–बदल कर फसलें उगाना
क्योंकि
मै कोई नेता तो हूँ नहीं
जो हुकुमत चलाता है
जनता को गुमराह करके
अपना घर भर लेता है
मेरे जीवन की एक कमाई
फसलें अच्छी हो हमारी ।
जो होता है उसी में
गुजर–बसर कर लेता हूँ !
क्योंकि मैं एक जमींदार हूँ,
बस ऐसे ही समझ आता हूँ ।
बीमार होने का हक नहीं है मुझे
मैं आधी बीमारी में ठीक हो जाता हूँ ।।
रोटी, कपड़ा और मकान
इन आवश्यकता को जुटाता रहता हूँ
कभी मां–बाप के लिए
कभी भाई –भाभी के लिए
कभी पत्नी व बच्चों के लिए
जीता चला जाता हूँ
दुसरो की जरूरतों को पूरा करते–करते
एक दिन दुनिया छोड़कर चला जाता हूँ ।
क्योंकि मैं एक जमींदार हूँ
बस ऐसे ही समझ आता हूँ ।।
सर्दी गर्मी और बरसात
उमस भरे मौसम में भी
खेत में खड़ा रहूँ, दिन–रात हर घड़ी

मेरे जीवन में की कमाई से
पलते हैं जीव–जन्तु
कीट–पतंगे
पशु–पक्षी एक धड़ी
करता हूँ ख्वाहिशे पुरी ये सबकी
पर अपनी जरूरतों का जिक्र नहीं करता
क्योंकि मैं एक जमींदार हूँ,
बस ऐसे ही समझ आता हूँ ।।
देश चलाने वालों
कुछ ध्यान इधर
मेरे जीवन की ओर भी देखों
परिस्थितियों से लड़ता रहता हूँ
क्योंकि मैं एक जमींदार हूँ
बस ऐसे ही समझ आता हूँ ।।

रामायण : एक प्रसंग

सौम्या अग्रवाल
मनोविज्ञान ऑनर्स द्वितीय वर्ष
चितकारा यूनिवर्सिटी, राजपुरा पंजाब।
दूरभाष – 9053708304

उत्तर प्रदेश की पावन नगरी अयोध्या जिसका नाम
भक्ति–भाव बसा कण–कण में रग–रग में सबके राम
राम भक्त तो हुए अनेक पर सीता माता की भी तो सुनो कहानी
वह नारी थी देवी का रूप, बात है ये सदियों पुरानी
काट रहे थे वनों में दिन , चौदह वर्षों की थी बात
अनुज लक्ष्मण और माता सीता भी थे प्रभु श्री राम के साथ
एक दिन था ऐसा आया
माँ सीता के मन को स्वर्ण मृग था भाया
लक्ष्मण–रेखा की प्रतिभा को तोड़ , साधु की करनी चाही सहायता
साधु के भेस में था कपटी रावण, आख़िर ये कौन था जानता
असुरक्षित एक नारी को जान, अधर्म वो कर बैठा
सीता माता को वायु विमान में बांध लंका जा पहुँचा
माता सीता का बचाने सम्मान
गरूड़ राज जटायु ने भी न्योछावर किए अपने प्राण
अधर्मी भले ही था रावण पर सीता माँ को ना उसने छुआ
माता के रहने का अशोक वाटिका में सम्पूर्ण प्रबंध था हुआ
त्रिजटा ने ली सीता माँ की शरण, समझा उनका दर्द
राक्षसनी होकर भी मानवता का निभाया फ़र्ज़
इधर राम सुध–बुध खो बैठे, पत्नी के वियोग में हो उठे चिंतित
रावण के विनाश के आरम्भ से इस प्रकार हुए हम सब परिचित
सतयुग के रावण को तो सब दानव हैं कहते
बेख़बर इस बात से कि कलयुग में हर गली में रावण हैं रहते
न दस उनके शीश हैं ना ज्ञान का है सागर
पर हर माता–पिता और पति का ध्यान है फिर भी नारी की रक्षा की
ओर एकाग्र
संभव होगा बुराई का अंत हर रावण के दहन से
पर कलयुग में क्या तब भी रह पाएगी सीता राम संग चैन से?

मित्रता

डॉ. ललिता कुमारी
हिंदी प्राध्यापिका
आर के डी एफ विश्वविद्यालय रांची, पिन कोड–834001

मित्रता और पवित्रता में नहीं है फर्क,
मित्र हो सच्चा तो जीवन है स्वर्ग,
मित्र ही हीरा, मित्र ही मोती मित्र से जगमग जीवन रूपी ज्योति,
मित्र ही दुआ, अरदास ,मन्नत इसके होने से जहाँ लगती जन्नत,
जीवन रूपी धार में या हो मझधार में,
किसी विपत्ति में या हो उन्नति में,
जब साथ हो तेरा, घनघोर अंधेरा भी लगे मानो सजल सवेरा,
मित्र मानों इत्र जिसकी खुशबू फैली सर्वत्र,
भाव में अभाव में या हो प्रभाव में तनिक भी परिवर्तन नहीं स्वभाव में,
सूर्य की पहली किरण बारिश की बौछार,
चाँदनी की शीतलता तारों की झिलमिलाहट,
जुगनू की चमक भँवरे की गुँजन,
इन सब की तरह ताजगी और नवीनता लिए हो हम सब की मित्रता ।